1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-6, अंक-6, जून-जुलाई 2023, ₹50/-

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सफलता के पथ पर निरंतर अग्रसर
सांस्कृतिक अनुष्ठान के 26 वर्ष पूर्ण

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

कावड़ चित्रात्मक कथा विशेषांक

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

''इस पॉलिसी में निवेश पोर्टफोलियो में निवेश का जोखिम पॉलिसीधारक द्वारा वहन किया जायेगा''
सबसे पहले लाइफ इंश्योरेंस
ऑनलाइन भी उपलब्ध
एक सीप - दो फायदे
बचत भी : सुरक्षा भी
एलआईसी की सीप
योजना सं.: 852 UIN 512L334V01
यूनिट लिंक्ड, असहभागी, व्यक्तिगत जीवन बीमा योजना
चुनने की आजादी:
बचत धनराशि:
आपकी बचत रु. 4000/– प्रति माह या रु. 40000/– प्रति वर्ष से शुरू हो कर जीवन के बड़े लक्ष्यों के लिए उससे अधिक हो सकती है।
4 फंड विकल्प:
आप बांड, सुरक्षित, संतुलित एवं वृद्धि में से कोई भी विकल्प चुन सकते हैं।
नि:शुल्क फंड परिवर्तन:
आप अपना धन वर्ष में चार बार नि:शुल्क एक फंड से दूसरे फंड में परिवर्तित कर सकते हैं।
आवश्यकता पर निकासी :
5 वर्ष उपरांत आप आंशिक निकासी कर सकते हैं।*
पॉलिसी के लाभ:
जोखिम सुरक्षा उपलब्ध
गारंटीकृत लाभ: यूनिट फंड वैल्यू के साथ गारंटीकृत लाभ*
पॉलिसी परिपक्वता: यूनिट फंड वैल्यू
पात्रता :
प्रवेश की आयु:
न्यूनतम आयु: 90 दिन
अधिकतम आयु: 65 वर्ष
परिपक्वता आयु:
न्यूनतम आयु: 18 वर्ष
अधिकतम आयु: 85 वर्ष
पॉलिसी अवधि: 10 – 25 वर्ष
एसएमएस करें अपने शहर का नाम 56767474 पर
कॉल सेंटर सेवा (022) 6827 6827
डाउनलोड करें एलआईसी मोबाइल एप "MyLIC"
विजिट करें www.licindia.in पर; हमें फॉलो करें LIC India Forever
*शर्तें लागू : अधिक विवरण के लिए अपने अभिकर्ता/एलआईसी की नजदीकी शाखा से संपर्क करें
भ्रामक/धोखाधड़ी वाले फोन कॉल्स से सावधान
आईआरडीएआई बीमा पॉलिसी विक्रय, बोनस की घोषणा अथवा प्रीमियम निवेश संबंधी गतिविधियों से संबंध नहीं रखता है। ऐसे फोन कॉल्स के प्राप्त होने पर आपसे निवेदन किया जाता है कि तुरन्त पुलिस से शिकायत दर्ज करवायें।
करार के प्रथम पाँच वर्ष में यूनिट से संबद्ध बीमा पॉलिसियां समाप्त नहीं की जा सकती। पाँचवे वर्ष के अंत तक यूनिट से संबद्ध बीमा पॉलिसियों को पॉलिसीधारक न समर्पण कर सकता है और न ही उनमें निवेश किये गए धन को आंशिक या पूर्ण रूप से निकाल सकता है।
LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA
मध्यक्षेत्र, भोपाल
LIC/AR/19-20/40/HIN
नियम व शर्तों की विस्तृत जानकारी के लिए बिक्री समापन से पूर्व बिक्री-पुस्तिका ध्यानपूर्वक पढ़ लें।
IRDAI Regn No.: 512
हर पल आपके साथ

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+06=26) पूर्णांक-123

वर्ष-6, अंक-6, जून-जुलाई 2023, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❊ **पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान** ❊

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तांतेड
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

❊

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

❊

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

❊

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

❊

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

रेखांकन : मनोहर काजल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

❊

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

❊

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

❊

उप संपादक
राहुल श्रीवास

❊

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य

❊

अरुण तिवारी
समसामयिक

❊

हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति

❊

नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

प्रो.डॉ. सरोज गुप्ता

राकेश शर्मा

लक्ष्मीनारायण पयोधि

चेतन औदिच्य

अश्विनी कुमार दुबे

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

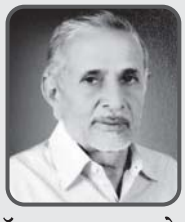
डॉ. भगवानदास पटेल

पं. गिरीन्द्र चन्द्र पाठक

डॉ. कहानी भानावत

डॉ. प्रकाश पतंगीवार

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - श्री विजय एम ढोरे | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **सहयोग**- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन :** मनोहर काजल **आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

इस बार

- **संपादकीय** 05
  देवताओं की भूमि उत्तराखण्ड की चार धाम यात्रा...
- **यात्रा वृत्तांत**
  सियोल नैशनल यूनिवर्सिटी न केवल... / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 07
- **अद्वैत-विमर्श**
  बुन्देलखण्ड की पुण्यधरा अद्वैत दर्शन .../ प्रो.डॉ.सरोज गुप्ता 09
- **आलेख**
  पाणिनि का भाषा दर्शन और लोकजीवन / डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी 17
- **संस्मरण**
  हिंदी का समाज अपने लेखकों पर गौरव... / राकेश शर्मा 21
- **कला-अक्ष**
  हिम्मत शाह: अंडर द मास्क / चेतन औदिच्य 24
- **जनजातीय संस्कृति**
  जनजातीय भाषाएँ और पारंपरिक ज्ञान-संपदा /लक्ष्मीनारायण पयोधि 27
- **संगीत-चिंतन**
  कला क्या है ?/ डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 30
- **समीक्षात्मक आलेख**
  'राम-सीता माता वारता' का मौखिक पाठ .../डॉ. भगवानदास पटेल 32
- **आलेख**
  अवनद्य वाद्यों के वादन में प्रयुक्त.../ पं. गिरीन्द्र चन्द्र पाठक 39
- **वृत्तांत**
  ऋग्वेद / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 41
- **आलेख**
  गांव-गांव भगवान राम की चित्रात्मक.../डॉ. कहानी भानावत 43
- **कावड़ चित्र वीथि** 45
- **आयोजन**
  संस्कृति-पर्व-6 चित्र वीथि 49
- **भाषांतर**
  कवि निकोनार पार्रा की कविताएं : मणि मोहन 53
  गीत: अशोक कुमार 'नीरद' के गीत 54
  कविता : संतोष तिवारी की कविताएँ 55
  कविता : डॉ. राजीव सक्सेना की कविताएँ 56
  ग़ज़ल : नवीन माथुर पंचोली की ग़ज़लें 57
- **आलेख**
  क्या पुराण कथाओं के पात्र पशु-पक्षी थे ?/डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 58
  असाढ़ में बरखा की बाट जोहते किसान/डॉ. प्रकाश पतंगीवार 61
- **सिनेमा**
  जमाना मेरे साथ चलता जाता है / अश्विनी कुमार दुबे 64
- **पुस्तक समीक्षा**
  बनीठनी / बी.एल. आच्छा 71
  पंचामृत/ सतीश राठी 73
  और इस बार जब तुम नदी बनीं/अलकनन्दा साने 77
  तीसरी लहर का कहर / डॉ. अरूण कुमार वर्मा 79
  समय से परे/ डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 81
- **सांस्कृतिक समाचार समवेत :** 84
  समिति शताब्दी अलंकरण समारोह से वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. देवेन्द्र दीपक और डॉ. अग्निशेखर सम्मानित / वसंत राशिनकर स्मृति अ. भा. सम्मान घोषित / गुरु-पूर्णिमा पर्व पर शास्त्रीय गायन, वादन, नृत्य की प्रस्तुतियों ने मोहा दर्शकों का मन / डॉ. लक्ष्यराजसिंह मेवाड़ के हाथों डॉ. महेन्द्र भानावत ने ग्रहण किया लोकभूषण सम्मान / साहित्य वाचस्पति डॉ. प्रभुदयाल मीतल की 121वीं जयंती पर किया उनका भावपूर्ण स्मरण / ऑल इंडिया डांस प्रतियोगिता भरतनाट्यम में स्वस्तिका प्रथम
- **संस्मरण**
  जब शबाना ने मुझे क्लोजअप क्लिक करने से रोका / जगदीश कौशल 90
- **समय की धरोहर**
  शबाना आजमी / जगदीश कौशल 91
- **पत्रिका के बहाने** 92

संपादकीय

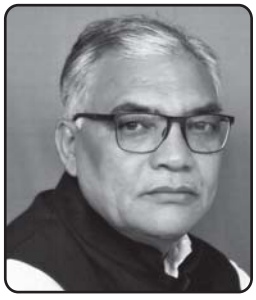

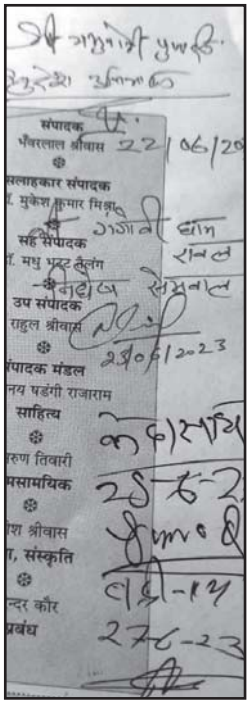

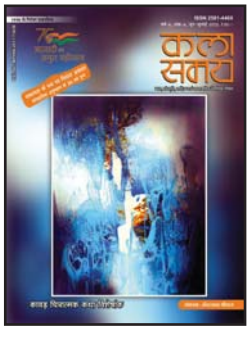

देवताओं की भूमि उत्तराखण्ड की चार धाम यात्रा
कला समय को मिला चारोंधाम का स्पर्श और आशीर्वाद

आज भी भौतिकवादी दुनिया के लिए यह समझना मुश्किल है कि वह कौन सी श्रद्धाशक्ति और विश्वास यात्रियों के अन्दर होता है, जिसकी प्रेरणा पाकर लाखों श्रद्धालु हिन्दु नर-नारियाँ चार धाम - यमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ की कठिन और लम्बी यात्रा के लिए चल पड़ते हैं। दस दिनों की यह यात्रा में उन चारों धाम के पवित्र स्थानों को पहुंचते हैं, जो हिमालय पहाड़ पर स्थित हैं।

उत्तराखण्ड धरती माँ! महान है। यहाँ पहाड़ आसमान से बातें कर रहें हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्ग का रास्ता यहीं से है। इसीलिए यह यात्रा ''हरिद्वार'' से प्रारंभ होती हुई ऋषिकेश से होते हुए चारोंधाम को जाते हैं। हमने जीते जी स्वर्ग नहीं देखा पर आज यहाँ आकर ऐसा लगता है कि स्वर्ग यहीं है। हिमालय पर्वत पर भी हजारों छोटे-बडे पहाड़ों का मेला चार धाम तीर्थ जहाँ बसा है! हर वृक्ष अपने-अपने मन से आने वाले यात्रियों का स्वागत करते हुए भक्तों के लिए चँवर ढालते नजर आ रहे हैं। जलेबी की तरह घुमावदार एकल पथ के बीच हजारों फिट नीचे माँ गंगा, माँ यमुना, माँ मंदाकनी, माँ अलखनंदा अपने शीतल जल और तप्त जल का प्रवाह देखते ही बनता है। हिमालय पर्वत के बीच से चारों अमृत तुल्य नदियाँ अपने प्रवाह से गतिमान है। हिमालय पर्वत ने इन चारों नदियों को अपने हृदय से रास्ता दिया है जहाँ चारों नदियों को उनके प्रवाह को हिमालय कहीं भी अवरोध पैदा नहीं करता दो हिस्सों में बटाँ हिमालय के बीच से हजारों फिट नीचे माँ गंगा सहित सभी नदियाँ आपस में मिलती-जुलती है और समुद्र में जा मिलती है। स्वर्ग की बेटी माँ गंगा और हिमालय की बेटी माँ पार्वती के साथ केदारनाथ और बद्रीविशाल जैसे चारों धाम में आकर भक्तों को दर्शन साक्षात दे रहें हैं।

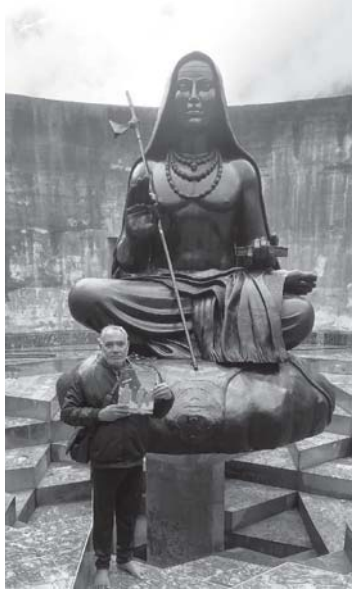

उत्तराखण्ड की धरती में प्रकृति का यह तालमेल देखते ही बनता है। यहाँ फलदार वृक्ष नहीं दिखे परन्तु विभिन्न प्रजाति के वृक्षों से पूरी धरती, पहाड़, जैसे हरी ओढ़नी पहनकर भक्तगणों का स्वागत करती कहीं हल्की वर्षा केदारनाथ, बद्रीनाथ में बर्फ से लदा हिमालय पर्वत जहाँ प्रभु चोटी पर विराजमान है। हिमालय पर्वत से ही चारों नदियों का उद्गम तेज गति से कलरव करती हुई स्वर्ग से धरती पर प्रवाहमान माँ गंगा जगह-जगह पर्वतों के बीच जगह-जगह झरनों से बहता हुआ सदानीरा का जल गतिमान हैं। माँ नमामि गंगे का उद्घोष करते भक्तगणों के वाहन हिमालयराज की चोटी जहाँ विराजे प्रभु के दर्शन के लिए हमारी गाड़ी चली जा रहीं थी। रास्ते भर गाड़ीयों का मेला स्थल पथ पर कहीं-कहीं गाड़ी को रिवर्स लेकर सामने से आते हुए वाहन को रास्ता भी देना पड़ा। पक्षी कम दिखें पर पहाड़ों पर बन्दरों का काफिला भी रोमांच करने वाला था।

रास्ते भर खाने-पीने-ठहरने की सुन्दर व्यवस्था बारह हजार घोड़े-खच्चरों, पालकी, डोलीयाँ

भक्तों के लिए सरकरी रेट पर प्री पेड सुविधा के साथ उपलब्ध है। चारों धाम में आने वाले यात्रियों के रजिस्ट्रेशन की जाँच बीच-बीच में होती है। रास्ते भर सुलभ शैचालय, गरम पानी की खास व्यवस्था घोडे-खच्चरों के लिए। पहाड़ों के बीच धूप-छाव का नजारा देख कर हृदय और मस्तक श्रद्धा से प्रकृति को बार-बार प्रणाम करता है। विकास कार्य प्रगति पर हैं। पहाड़ों को लोहे की जाली से कसना धसकने से बचाने के लिये कहीं-कहीं पुलों का निर्माण सुरंग के रास्ते और पहाड़ों पर लाइट, पेट्रोलपंप, नेटवर्क की कोई दिक्कत नहीं यह सराहनीय कार्य उत्तराखण्ड सरकार का हैं। साफ-सुथरा वातावरण मेहनती ईमानदार गढवाल के लोग चौबीसों घन्टें श्रद्धालु यात्रियों की सेवा में संलग्न हैं।

चारों धाम में सबसे पहले हम माँ यमनोत्री के उद्‌गम स्थल तक पहुँचे माँ यमुना के भव्य मंदिर में 'कला समय' पत्रिका का आचार्य शकंर प्रकटोत्सव ''एकात्मपर्व'' विशेषांक मंदिर के मुख्य पुजारी को 22 जुलाई 2023 को माँ यमुना के श्रीचरणों में समर्पित किया। उसके बाद दिनाँक 23 जुलाई 2023 को माँ गंगोत्री के विशाल मंदिर में मुख्य पुजारी द्वारा माँ गंगा को कला समय समर्पित की। दिनांक 25 जुलाई 2023 को बाबा केदारनाथ के मंदिर में मुख्य पुजारी द्वारा केदारनाथ जी के श्रीचरणों में अर्पण हेतु पत्रिका कला समय दी इसके बाद मंदिर के ठीक पीछे आदि शंकराचार्य की समाधि स्थल पर प्रतिमा शंकराचार्य जी के श्रीचरणों में उन पर केन्द्रित विशेषांक समर्पित किया और अंतिम धाम बद्रीनाथ में दिनाँक 27 जुलाई 2023 को बद्रीनाथ मंदिर में मुख्य पुजारी द्वारा बद्रीनाथ के श्रीचरणों में कला समय समर्पित की, इस तरह चारों धामों को स्पर्श और आशिर्वाद कला समय को मिला इस पत्रिका के कारण मुझे और मेरी धर्म पत्नी को भी चारों धाम के दर्शन हुए। इसके पूर्व अयोध्या भी कला समय रामलला के श्रीचरणों का स्पर्श पा चुकी हैं। मैं कला समय को सशरीर ही मानकर इसके साथ प्रयागराज संगम तक का इस पत्रिका को स्पर्श मिला। यह अपने आप में गौरवान्वित करने वाला प्रसंग है। यह मेरा नहीं पत्रिका कला समय का सौभाग्य है।

उत्तराखण्ड की यात्रा जवान लोगों के ही बस की बात है वरिष्ठ नागरिक या तो पालकी में जा सकते हैं या फिर डोली में घोड़े-खच्चर में खड़ी चढ़ाई और खड़े ऊतार में बहुत ही सावधानी से बैठना होता है। क्योंकि लगातार बरसता पानी, बर्फ सर्दी ठंड़ और गिरता बर्फ वृद्धजनों के लिए बहुत मुश्किल है। इसी के साथ ऊपर आक्सीजन की कभी-कभी कमी भी महसूस होने पर लोग कपूर-अजवाइन का उपयोग करते दिखे थे। जो राहत देता है। हिमालय पर्वत पर बर्फ जमा होने के कारण चाँदी जैसा चमकता पर्वत धूप पढ़ने पर प्रभु आराधना में लीन लगता है। पहाड़ों पर अनुशासित 100 फिट ऊँचे पेड जैसे यात्रियों के लिए सुरक्षा कवच के रूप में उपस्थित हैं। काश मनुष्य भी प्रकृति से प्रेरणा ले पाता! पहाड़ो पर चलते वाहन बच्चों के खिलौने जैसे प्रतीत होते है दूर से देखने पर ऐसा लगता है। पहाड़ों पर हर तरह का सामान पानी, निर्माण सामग्री सब घोडे-खच्चरों के द्वारा जाती है। दिन में यात्रियों को तथा रात में अन्य उपयोगी सामग्री घोड़े-खच्चरों द्वारा भेजी जाती हैं। चारों धाम में हर पल खतरा रास्ते भर रहता है। फिर भी आस्था का सेलाब कहाँ रूकता है। हमने सफर के दौरान पहाड पर भीम पत्ता का जूस पिया जो स्वादिष्ट और पौष्टिक दोनों ही है। गाय, भैस, बकरीयों का पहाडी जड़ी-बूटी वाला पौष्टीक दूध की बात निराली है।

केदारनाथ की वह चट्टान जो मंदिर के पीछे आज भी पूज्यनीय है 16 जून 2013 में भीषण बाढ़ आई थी मंदिर के पीछे की शिला ''जिसे हम भीम शिला कह सकते हैं। उस विशाल चट्टान के कारण बाढ का पानी दो भागों में बट गया और केदारनाथ जी के मंदिर के दोनों ओर से बहकर निकल गया उस वक्त बताते है मंदिर में 300 से 500 लोग शरण लिए हुए थें। आज भी इस वैज्ञानिक युग में यहाँ का दृश्य देखकर पल-पल ईश्वर याद आता रहा।

चारोंधाम में सेवारत मुख्य पुजारियों को कला समय देना पत्रिका को प्रभु के श्रीचरणों में स्थान, स्पर्श मिलना शायद यह पहला अवसर ही होगा जब कोई पत्रिका चारोंधाम में अपने जीवन की 26 वर्षो की इस यात्रा में शुभाशीष लेकर लौटी। लौटने पर ऋषिकेश, हरिद्वार और उज्जैन में माँ शिप्रा में स्नान आचमन के बाद महाकालेश्वर से आशीष लेते हुए भोपाल सकुशल पहुँच गये। यह ईश्वर कृपा और माता-पिता, पितरों का ही आशीर्वाद मैं इसे मानता हूँ। सच कहें तो चारों धाम आदिगुरु शंकराचार्य जी का ही पुण्य प्रसाद है।

ज्यादा ख्वाहिशे नहीं ऐ जिंदगी तुझसे बस
अगला कदम पिछले से बहतरीन हो...

- भँवरलाल श्रीवास

यात्रा वृत्तांत

सियोल नैशनल यूनिवर्सिटी न केवल दक्षिण कोरिया अपितु विश्व के सबसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में से एक है

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

प्रज्ञा के प्रपात और ज्ञान के आलोक स्तम्भ के रूप में विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा है। इसलिए किसी भी देश में वहां के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में जाना और वहां विमर्श करना किसी तीर्थ में जाकर अपने आराध्य को अर्घ्य अर्पित करना है। मुझे यह सौभाग्य सियोल में मिला।

सियोल नैशनल यूनिवर्सिटी न केवल दक्षिण कोरिया अपितु विश्व के सबसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में से एक है। यह राष्ट्रीय अनुसंधान विश्वविद्यालय है। तीन विशाल परिसरों में फैले इस विश्वविद्यालय की स्थापना 22अगस्त 1946 को सियोल के पहाड़ियों से घिरे सुरम्य परिसर में की गई थी। इस विश्वविद्यालय की उत्कृष्टता को इस आधार पर मापा जा सकता है कि यह विश्वविद्यालय 40देशों में अनेक अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों के सहयोग से 700से अधिक शैक्षणिक कार्यक्रम प्रदान करता है। विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय में 51 लाख से अधिक पुस्तकें हैं,और तीन हज़ार से अधिक समाचार पत्र तथा पत्रिकाएं यहां नियमित आती हैं । इसके अंतर्गत 27 से अधिक महाविद्यालय हैं तथा पांच हज़ार से अधिक का शैक्षणिक स्टाफ है। विश्वविद्यालय का अपना कला संग्रहालय और जिम है। कोरिया के सातवें राष्ट्रपति किम यंग सैम और तेरहवें राष्ट्रपति यून सुक येओल,संयुक्त राष्ट्र संघ के आठवें महासचिव बान कि मून और सैमसंग के अधिष्ठता ली जे यांग इसी विश्वविद्यालय की देन हैं।

इसलिए यहां आना तथा कला और साहित्य को लेकर भारतीय कला और साहित्य पर चर्चा करना मेरे लिए गौरव का विषय था भारतीय कला तथा बौद्ध कला के विश्व प्रतिष्ठित विशेषज्ञ डॉक्टर रि जू हियूंग से मिलना एक अनुभव था। उन्होंने बड़ी सहृदयता के साथ मुझे विश्वविद्यालय में आमंत्रित किया। उनका विशद कार्य ईसा पूर्व से पांचवीं सदी तक की बौद्ध कला पर विशेष रूप से है। सांची और भरहुत तथा गांधार शिल्पों को लेकर विस्तार से चर्चा हुई। मैं विस्मित हुआ जब उन्होंने मध्यप्रदेश के बौद्ध स्थलों का विशेष कर धमनार, बाघ और सुदूर विंध्य में अवस्थित गढ़ कुठार का संदर्भ दिया। उन्होंने दक्षिण कोरिया और भारत की आंचलिक दृश्य और लेखन परंपराओं के साथ साथ, एशिया के सौन्दर्य शास्त्र तथा भक्ति और सौंदर्यशास्त्र के स्वभाव में द्वंद्व को लेकर मौलिक विचार करते हुए अनेक पुस्तकें लिखी हैं तथा पूर्वी एशिया से भारत गए बौद्ध यात्रियों पर कृति लिखी है। मैंने जब सांची और उससे जुड़े साहित्य और काव्य के अंतर्संबंधों पर बात की तो उनका आग्रह रहा कि मैं उन्हें एक पेपर उन्हें तैयार कर दूं। वे अंतरानुशासन के प्रामाणिक विद्वान हैं तथा उनसे मैंने भारतीय चित्रांकन परंपरा के बारे में बात की तो उन्होंने कोरिया के शिल्प और चित्रांकन वैभव की मुझे जानकारी दी।

सियोल विश्वविद्यालय में मुझे आत्मीयता के साथ आमंत्रित किया डॉक्टर हुआन कू ने। वे वहां भारतीय तथा दक्षिण एशियाई कला की प्रोफेसर हैं तथा भारत में रहकर उन्होंने भारतीय कला और उसके इतिहास का गहरा अध्ययन किया है। यूनिवर्सिटी ऑफ मिनिसोटा से उन्होंने भारतीय कला इतिहास के विभिन्न पक्षों पर अपनी शोध कर डॉक्टरेट प्राप्त की है। वे सियोल विश्वविद्यालय के छात्र संघ की नियंत्रक भी हैं। उनके कक्ष में भगवान जगन्नाथ और श्रीनाथजी के दर्शन करना अपने आपमें विस्मित कर देने वाला अनुभव था।

डॉक्टर वू भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत हैं तथा सुंदर हिंदी बोलती हैं। उन्होंने सियोल के हानसुक विश्वविद्यालय में तीन वर्षों तक वहां के हिंदी विभाग में कार्य किया है। वे भारतीय कला और हिंदी की विभिन्न विधाओं के अंत:सूत्रों को खोजती हैं। उनसे मैंने गीत गोविंद के लघुचित्रों, कान्हेरी शैली तथा हिंदी के समकालीन गद्य को लेकर लंबी बात की तथा उनके विद्यार्थियों से भी संवाद हुआ। वहां ऐसे विमर्श के लिए बड़ी सुंदर व्यवस्था होती है। प्रस्तुतिकरण के लिए बड़ा परदा स्थाई रूप से लगा होता है तथा अत्याधुनिक प्रोजेक्टर लगा होता है।

वे वर्तमान में कंपनी शैली में बनाए गए लेडी इम्पे के संग्रह के लघुचित्रों पर कार्य कर रही हैं। मेरे द्वारा अपने प्रस्तुतिकरण में विभिन्न लघुचित्र शैलियों के अंकनों के बारे में अवगत कराया गया तथा पटना और बनारस सहित प्रोविंशियल मुगल कलम के अंकनों पर कंपनी कलम का क्या प्रभाव रहा तथा हमारी समकालीन साहित्य धारा का क्या प्रभाव इस चित्रांकन शैली पड़ा इसके बारे में भी रोचक चर्चा हुई।

विश्विद्यालय की ओर से सम्मान स्वरूप स्मृति चिन्ह भेंट किए गए तथा विश्वविद्यालय में स्थापित कला संग्रहालय का अवलोकन वहां की शोधकर्ता सुश्री जियोंगमिन ली के द्वारा कराया गया।

– लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
संपर्क : 85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास, केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

■

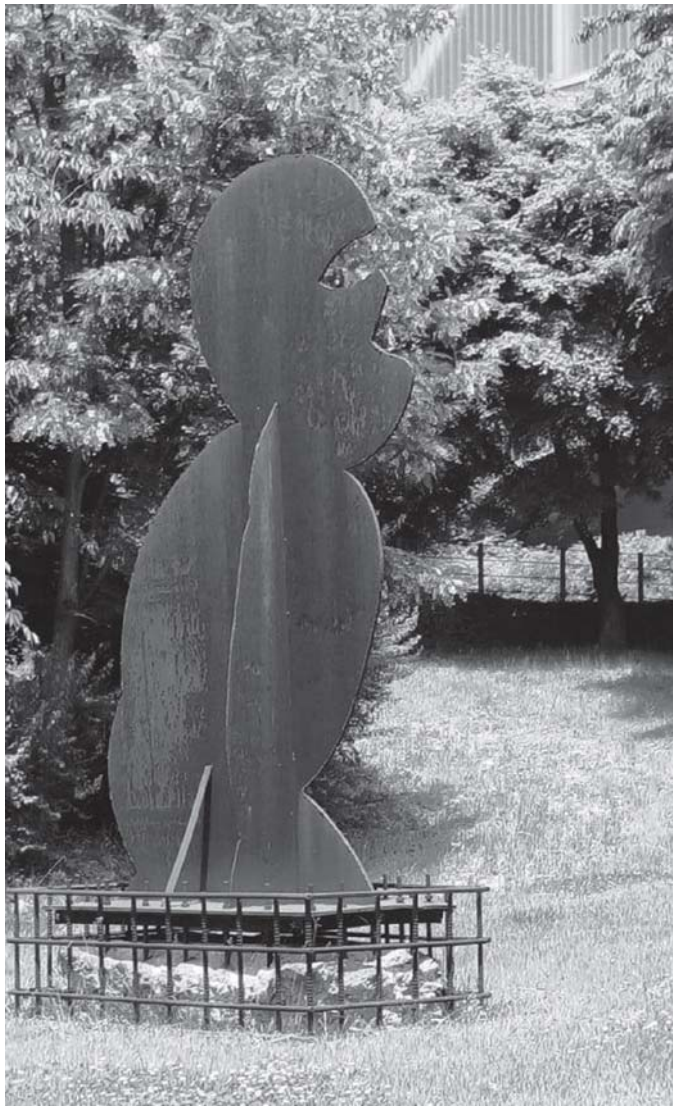

अद्वैत- विमर्श

बुन्देलखण्ड की पुण्यधरा अद्वैत दर्शन की गंगोत्री, कवि भगीरथ और कवितायें गंगा सी प्रवहमान

प्रो.डॉ. सरोज गुप्ता

बुंदेलखंड भारतवर्ष के नाभि प्रदेश पर स्थित विन्ध्यपर्वत के सुरम्य प्रांगण में, दशार्ण- दस नदियों से घिरा- यमुना, चंबल, तमसा पुष्पावती-पहूज, शुक्तिमती-केन, और वेत्रवती (वेतवा) आदि की जलधाराओं से अभिसिंचित भारत का हृदयस्थल है। उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश दो राज्यों में विभक्त इसका भूभाग समवेत रुप से एक विशिष्ट सांस्कृतिक प्रदेश है। जिसकी जड़ें वैदिक संस्कृति से पोषित है। यह क्षेत्र सूर्य, अग्नि तथा इन्द्र की पूजा आराधना का केंद्र रहा है। प्राचीन काल में बुंदेलखंड भरुच, कच्छ, गुजरात, इलाहाबाद, झाँसी, श्रृंगवेरपुर से लेकर काफी विस्तृत, मध्यदेश के नाम से प्रसिद्ध रहा है। यहाँ के निवासी अध्यात्मपरक व दार्शनिक हैं। यहाँ का धर्म, अध्यात्म व दर्शन एक वलिष्ठ रज्जू की तरह है जिसमें ज्ञान के ऐसे सूत्र या तात्विक संदर्भ भरे पड़े हैं जो अलग होते हुए भी आपस में एक-दूसरे से गुंथे हुए से प्रतीत होते हैं। लोक मन भी इनसे अछूता नहीं है। वैदिक ऋषियों की बातों, धारणाओं को लोक ने खूब ग्रहण किया। पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश प्राकृतिक शक्तियों की पूजा ''लोके च वेदे च'' के रुप में प्रचलित रही। लोकगीत, लोक कथाएं, लोक गाथाओं के माध्यम से लोकमानस चिरन्तन काल से देवी देवताओं की सृष्टि करता रहा है, उन्हें पूजता रहा है। लोक चित्त में वेदों के ज्ञान की झलक हमें समय समय कवियों साहित्यकारों की रचनाओं में दिखाई देती हैं। लोक की रचनात्मकता किसी से छिपी नहीं है। पुराणकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ उन्होंने सहज सरल भाषा में ज्ञान की धारा को लोकोन्मुख कर आदान-प्रदान की सांस्कृतिक परम्परा का शुभारंभ किया। ''**पुराणं लोक सम्मतम्**'' का प्रभाव कथा, कहानियों गीतों, किंवदंतियों में दिखाई देने लगा। श्री मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि ''**मनुष्यः कुरुते तन्नु यन्न शक्यं सुरासुरैः**'' - मनुष्य जो कर सकता है वह स्वर्ग के देवता भी नहीं कर सकते। कर्म परायणता पृथ्वी के मानव की सबसे बड़ी शक्ति है। (मा.पु.57/63) तंत्र, मंत्र, यंत्र आगम निगम पुरान सब लोक में ग्राह्य हुए। क्षेत्र विशेष में धर्म अध्यात्म और दर्शन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा।

बुन्देलभूमि महान ऋषियों तपस्वियों की तपोभूमि रही है। महर्षि दुर्वासा पराद्वैतदर्शन के जनक हैं। कलियुग के प्रारंभ में इस लुप्तप्राय विद्या या शास्त्रों की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए बुन्देलखण्ड के ऋषि दुर्वासा जी जो मंदाकिनी के तट पर चित्रकूट में साधना लीन थे। उनको श्रीकण्ठनाथ शिव ने आज्ञा दी कि तुम अपने योगबल से शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करो। ऐसे बुन्देलखण्ड के महर्षि वन्दनीय ऋषि दुर्वासा को मैं प्रणाम करती हूँ-

''शिवाप्ति कारणम्, ताप वारणम्, लालितम् हृदि।
द्वयं गुरोश् चरणरद्वयं, स्फुरतां मम्।
वन्देऽत्रिनन्दनम्, विश्ववन्दितं करुणाअर्णवम्।
कोप भट्टारकम्, पूर्ण योग दीक्षा प्रदम् गुरुं।''

महर्षि अत्रि अनुसुइया के पुत्र ऋषि दुर्वासा ने अपने तपोबल से तीन मानसिक पुत्रों को उत्पन्न किया। त्र्यंबकनाथ, आमर्दकनाथ और श्रीनाथजी, जिन्होंने अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैत शिवशास्त्रों का शुभारंभ किया।

इस प्रकार भारत की सुदीर्घ ज्ञान परंपरा में कश्मीर पराद्वैतशैव दर्शन, समस्त दर्शनों के नंदनवन का कल्पवृक्ष है। दिव्य भारतीय शिवभक्तों की साधना फल है। साधना प्राप्ति की यह यात्रा वैदिक काल से लेकर कश्मीर शैव दर्शन तक हमें सर्वत्र दिखाई देती है। नारद और सनकादि ऋषियों ने त्याग-साधना और तपस्या की धूनी इसी बुन्देलखंड में रमाई है। दतिया जिला के सेंवढा सनकुंआ नामक ग्राम में पद्म पुराण के अनुसार ब्रह्मा के मानस पुत्र सनत कुमार ने यहाँ तपश्चर्या की थी। नदी के तट पर एक शिव मंदिर है जहाँ गौमुख से शिवलिंग पर अविरत जल की धारा बहती है। यहीं पर वनस्थली में शिला नारदा - नारद मुनि की सिद्ध तपस्थली है। जहाँ अद्वैत दर्शन के सुप्रसिद्ध कवि अक्षर अनन्य का जीवन बीता। इसीतरह झांसी से 16 मील दूर बीजौर और बाघाट के पास दौन ग्राम में- महाभारत के गुरु द्रोण का जन्म स्थान माना जाता है। यहाँ छोटी-छोटी पहाड़ियां स्थित है जो द्रोन तलैया कहलाती हैं। वेदव्यास के पिता महर्षि पाराशर जालौन के पास बेतवा तट पर स्थित पराशन नामक गांव में रहे।

पाराशर ऋषि की दीर्घकालीन साधना की शक्ति इस प्रदेश के कण कण को ऊर्जस्वित बनाती है। बह्माण्ड पुराण में ऋषि पाराशर की प्रशस्ति वर्णित है। यहाँ अश्विन क्वार मास के पितृपक्ष में मेला भरता है तथा पाराशर तट पर मछलियां चुगाने का बहुत महत्व है। कहा जाता है कि यहीं पर पाराशर ऋषि ने वेतवा पार करते समय मछुआरे धीवर कन्या के प्रति आकृष्ट होकर गंधर्व विवाह किया था और भगवान वेदव्यास का जन्म हुआ था।

महर्षि वेदव्यास ने कालपी क्षेत्र में महाभारत और पुराणों की रचना की है। पुरातन काल में कालपी में विश्वविद्यालय था। कल्प व्याकरण की शुरुआत सर्वप्रथम कालपी से ही हुई। कालपी में आज भी व्यास टीले के नाम से भव्य आश्रम है। बबीना बाल्मीकि की साधना स्थली रही। राठ हमीरपुर में राजा विराट की राजधानी थी। यहाँ पर दुर्योधन ने लाक्षागृह बनवाया था। कीचक वध स्मारक के स्तंभ यहाँ पर हैं। ऋषि उद्दालक जिनका दूसरा नाम वाजश्रवा ऋषि था इनका आश्रम बुन्देलखण्ड के उरई जिला जालौन में था। इनके शिष्य कुक्षि ने अपने गुरु बाजश्रवा से वेदों का अध्ययन किया था। चंदेरी अशोक नगर में शिशुपाल वर्षों तक शासन करता रहा। बानपुर ललितपुर जनपद में वाणासुर की राजधानी रही। एरच के शासक हिरण्यकश्यप का वध करने भगवान विष्णु ने नरसिंह रूप यहीं धारण किया था।

बांदा के पास कालिंजर में महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा ने घोर तपस्या की और विंध्याचल के शाष्टांग होने पर उसे यथावत रहने का आदेश देकर फिर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। चित्रकूट में ऋषिअत्रि, अनुसुइया की तपस्थली है। दत्तात्रेय, चंद्रदेव एवं दुर्वासा अत्रि पुत्रों का पालन पोषण इसी धरा पर हुआ। अत्रि–अनुसुइया की पुत्रियों– अपाला, विश्ववारा ने चित्रकूट में साधना की। पन्ना सारंग बृहस्पति कुण्ड के लिए प्रसिद्ध है। वृहस्पति पुत्री रोमशा की साधना स्थली पन्ना सारंग रही। और भी बहुत सारे ऐसे स्थल हैं जिन्हें एक साथ रखने पर हम बुन्देलखण्ड की धर्म, अध्यात्म और दार्शनिक विरासत को विस्तार से समझ सकते हैं। महोबा गुरु गोरख गिरि पर्वत और आल्हा ऊदल की वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। इसप्रकार बुन्देलखंड को ऋषि–मुनियों ने साधना स्थली बनाकर इस धरा को गौरवान्वित किया। हमारे बुन्देलखंड में एक लोकोक्ति प्रचलित है –

''भैंस बियानी ओरछा, पड़ा होशंगाबाद।
लगवैया है कालपी, चपिया रेवा पार।''

ओरछा तुंगारण्य में वेद वाणी व्यक्त हुई। इसका रस जानने वाला ऋषिकुल होशंगाबाद, पारियात्र सह्याद्रि की पहाड़ियों में विचर रहा है। लगवैया हैं वेदव्यास जी कालपी वाले, चपिया– दुग्ध पात्र सबका सब रेवा के उस पार है। बुंदेलखंड के विद्वानों ने वेदों पर भाष्य नहीं लिखे। हमारे पितृपुरुष बहुत ज्ञानी रहे, वह जिज्ञासु व्यक्ति की ज्ञान पिपासा को उद्दीप्त करने के लिए सूत्र रुप में बात कहा करते थे ताकि जानने वाला अपने धर्म ग्रंथों को समझ कर ज्ञानार्जन करें। इस किंवदंती को स्पष्ट करने के लिए ''**मदन रस बरसै**'', बुन्देली ललित निबंध संग्रह का अध्ययन करना होगा जिसमें विस्तार से पूरा वृतांत दिया गया है। जिसके रचयिता आचार्य पं दुर्गाचरण शुक्ल जी हैं।[1] इसप्रकार हमारी ऋषिचेता बुन्देलभूमि ऋषि मुनियों की साधना स्थली रही है।

अद्वैत दर्शन के प्रवर्तक आचार्य शंकर का जन्म दक्षिण में हुआ परन्तु वह अपने गुरु की खोज करते करते रेवा नदी के तट पर बसे ओंकारेश्वर आये। प्रस्थान त्रयी– ब्रह्म सूत्र, उपनिषद और श्रीमद्भगवद्गीता की विशद व्याख्या कर ''**ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या**'' या ''**सर्व खलमिदम् ब्रह्म**'' के रूप में अद्वैत दर्शन की व्याख्या की। वैसे तो अद्वैत सम्बन्धी मान्यताएं अतिप्राचीन हैं फिर भी इसका शुभारंभ आदिगुरु शंकराचार्य एवं उनके दादागुरु गौड़पादाचार्य से हुआ। जिन्होंने **एकमेवाद्वितीयम्, तत्वमसि, अहंब्रह्मास्मि** कहकर ब्रह्म का स्वरुप– जीव, जगत व ईश्वर इन तीनों का आधार ब्रह्म कहा है और वही सबकी आत्मा है बताया। अविद्या एवं मिथ्या प्रतीति के कारण अस्तित्व का भ्रम बना रहता है। शंकराचार्य का उदय भारतीय चिंतन की दिशा में युगान्तरकारी घटना है जिसका व्यापक प्रभाव सम्पूर्ण भारत पर पड़ा।

बुंदेलखंड में कवियों की बहुलता रही है इसका प्रमुख कारण इस क्षेत्र की वन्दनीय भूमि को प्रकृति ने सजाया संवारा है। ऊंची–नीची विंध्याचल की श्रृंखलाबद्ध पर्वतमालाएं, विशाल शाखाओं वाले गगनचुंबी वट तथा अनेक वृक्ष, हरे–भरे सघन वनकुंज निर्मल जल से आपूरित सर–सरितायें देख ऐसा कौन–सा मानव हृदय होगा जो आनन्दविभोर न हो उठे। जनसाधारण बुन्देलखंड के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता फिर प्रकृति पुजारियों और स्वान्तःसुखाय कविता करने वाले कवियों की बात ही अलग होगी। बुंदेलखंड में पौराणिक काल से ही अनेकानेक सुकवि और वीर आत्माओं ने जन्म लिया है। संस्कृत साहित्य के आदिकवि वाल्मीकि जी, असाधारण विद्याओं के भण्डार तपोनिधि पाराशर जी, अष्टादशपुराणों तथा महाभारत के रचयिता कृष्ण द्वैपायन व्यास जी, वीर मित्रोदय, वृहदकोष के रचयिता मित्र मिश्र, प्रबोध चन्द्रोदय के रचयिता पं कृष्ण मिश्र पं काशीनाथ मिश्र जी इसी पवित्र भूमि के उज्जवल रत्न थे।

हिन्दी भाषा के प्रथम आचार्य ओरछा के कवीन्द्र केशवदास

जी मिश्र, अग्रज बलभद्र मिश्र, अनुज पं कल्याण मिश्र तथा केशवदास जी के पुत्र पं. बिहारीलाल मिश्र प्रपौत्र पं हरिसेवक मिश्र, बालकृष्ण, शिवलाल मिश्र इसी बुन्देलखंड में ही जन्मे। कालपी निवासी महाराजा वीरबल जिनका नाम महेशदास था और टोडरमल खत्री भी बुन्देलखंड के रहे जो आगे चलकर अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक बने। ग्वालियर के त्रिलोचन मिश्र संगीतज्ञ ने अपना नाम तानसेन रखा। रहीम जी चित्रकूट में रहे। ओरछा के हरिराम शुक्ल व्यासजी, चतुर्भुज कवि कृष्ण शनाढ्य पं लालकवि पजनेश कवि दतिया के गदाधर,चरखारी के खुमान, जवाहर, मोहनलाल, मानकवि, छतरपुर के ठाकुर कवि,गंगाधर व्यास, ख्यालीराम, ईसुरी, अजयगढ़ के लल्ला परमानन्द, मऊ के कुंजी लाल, जनकेश और गिरधारी कवि, सेवड़ा के हरिकेश तथा जैतपुर के मण्डन कवि सागर के पद्माकर भट्ट, झांसी के नवलसिंह, हृदयेश कवि आदि बुन्देलखंड क्षेत्र के जगमगाते नक्षत्र रहे हैं।[2] बुंदेलखंड का अधिकांश भाग देशी राज्यों से घिरा हुआ है। ओरछा, पन्ना, छतरपुर, बिजावर, अजयगढ़, चरखारी, दतिया, समथर आदि के विद्या प्रेमी राजाओं ने उससमय के श्रेष्ठ कवियों को अपने आश्रय में रखकर कवियों की कीर्ति को चिरस्थाई बनाकर स्वयं भी यश-कीर्ति अर्जित की।

बुन्देला राजाओं के आश्रय में चारणों, भाटों, कवियों को यहाँ की महिमा व सांस्कृतिक विरासत को संजोने के पर्याप्त अवसर मिले। महर्षि वाल्मीकि की रामायण बुन्देलखंड में सर्वप्रथम रची गयी। गोस्वामी तुलसीदास जी कृत रामचरितमानस के पूर्व संत विष्णुदास की रामायन प्रचलन में थी। कवि जगनिक को मैहर की देवी मां शारदा का आशीर्वाद प्राप्त था। चंदेल नरेशों ने वैष्णव और शैव दोनों सम्प्रदायों को राजाश्रय प्रदान किया था। पराक्रमी यशोवर्द्धधन बड़ा धर्मात्मा था। उसने खजुराहो में बैकुंठ मंदिर का निर्माण करवाया था। महोबा व अन्य स्थानों में मंदिरों की प्रतिष्ठा की। शैव होते हुए भी कट्टर शैवों और कट्टर वैष्णवों की एकता पर ध्यान दिया। उन्नाव बालाजी, रहली आदि स्थलों पर सूर्यपूजा का भी प्रचलन था। शक्ति पूजा उपासना का विकास दुर्गा, काली, चौसठ योगिनी मनियां देवी बीजासेन देवी, कालका का पूजा प्रचलित थी। धार्मिक एकता के फलस्वरूप ही बुन्देलखंड पर इस्लाम का प्रभाव नहीं पड़ सका। मंदिरों को खण्डित किया गया परन्तु धर्मपरिवर्तन की समस्या अधिक नहीं रही।[3]

बुंदेलखंड अंचल में प्राचीन काल से पराविद्या का प्रचलन बीज, बिंदु, कूटचक्र आदि से सम्बंधित बीज अधिष्ठाता माता, बीजासेन देवी का पूजन जिसे श्रीविद्या, महाविद्या भी कहते हैं का सरलतम लोक स्वरुप प्रचलित रहा है। जिसके बीज ऋग्वेद में हैं जिसे आगम साहित्य में परमा गुह्य विद्या भी कहा गया है। शंकराचार्य ने देश के चार मठों में श्रीयंत्र प्रतिष्ठित कर परापूजा की परमपदवी प्रदान की है। बुन्देला राजाओं की वंशावली में इस परा बिंदु पूजा का उल्लेख मिलता है। बुन्देला क्षत्रिय कश्यप गोत्रीय काशीराज कुल की शाखा के रहे हैं। बुन्देलों के उत्कर्ष एवं गहरवार से नामकरण का उल्लेख सम्वत् 1441 में लिखी गई बुन्देला वंशाउरी में मिलती है। बुन्देला वंश काशी के सुप्रसिद्ध गहिरवार वंश से निकला है। गहिरवार क्षत्रिय मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के पुत्र कुश के वंशात्मज माने जाते हैं।[4] काशी के राजा दिवोदास की दो रानियां थीं। बड़ी रानी बघेल राजा सुजान सिंह की पुत्री सदाकुंवरि तथा दूसरी रानी बूंदी की हाड़ा वंश की देवकुंवर थीं। बड़ी रानी से चार और छोटी से एक पुत्र हेमकर्ण था जिसे पांचवां पुत्र होने के कारण उसे पंचम कहा गया। पिता की मृत्यु के पश्चात् हेमकर्ण को निकाल दिया गया। हेमकर्ण ने विंध्यवासिनी देवी की कृपा से पुन: राज्य प्राप्ति की। किसी कवि ने कहा है कि ''तजि बाल पिता सुरलोक गये, लघु जान को बंधुन दु:ख दये।'' सं. 1601 की वंशावली में इसका उल्लेख इसप्रकार है-हेमकरन कौ श्री विंध्यवासिनी की दया भई सेवा करी संवत् 1358 की साल में राजा नै देवी कौ पांच बेर माथौ चढाऔ, पांच बेर माथौ रुंड में तै कढ़ौ तब देवी नै वरदान दओ, बुन्देला कहे अब सन्तान चलौ।[5]

बुन्देला राजाओं के चारणों, भाटों और उनके आश्रित लेखकों, कवियों ने ग्रंथों में विस्तार से विवेचन किया है कि विन्धयवासिनी देवी की कृपा से ये राजा बुन्देला कहलाये।

''धरनी पद पंचम एकु धरौ, जुग लोचन त्राटकु ध्यान करौ।
तन भूख तृषा सब जीति लये, हठ के इम बासर सात भये।
दिवि मंडल तैं धुनि एक सुनी, लहिहौ निज भागहिं भूमि गुनी।
तब उत्तर राजकुमार दियो, घर हेतु परिश्रम मैं न कियो।
फिर बासर चारि गये जब ही, करि कै करवार लियो तबही।
बरही जब काटन कंठ लग्यो, जननी भरि मोद हियो उमग्यौ।
झकझोरि भुजा करिवारु गह्यो, छतु ह्वै कछु श्रोणित विंदु बह्यौ।
धरि बुंद सिवा छत मोचन सौं, कुलदेवि विलोकित लोचन सौ।
सिर डोलत चंद्रकला बरसी, तब श्रोनित विंदु सुधा परसी।
तिहि तैं नरपाल बुंदेल बली, प्रकट्यौ जग कीरति बेलि चली।''

इस सत्यता के प्रमाण राज पुरोहित दतिया के पास सुरक्षित है। कवि श्री चुन्नू पुरोहित के संग्रह में विन्दु (शक्ति) की उपासना से पंचम बुन्देला को वरदान प्राप्त होने का विशद वर्णन किया है।[6] बुन्देलखंड धरा पराद्वैतशैवदर्शन की गंगोत्री है। महर्षि दुर्वासा, महर्षि

अगस्त्य, बाल्मीकि, वेदव्यास, गोस्वामी तुलसीदास वैश्विक कवि रहे हैं। इनका प्रभाव बुन्देलखंड के अधिकांश कवियों पर पड़ा। जिन्होंने अवतारी श्रीराम, श्रीकृष्ण के जीवन चरित का खूब वर्णन किया है। अद्वैत दर्शन को साधने वाले बुन्देलखंड के प्रमुख कवियों में संत कवि अग्रदास जी,संत प्राणनाथ, अक्षर अनन्य जी, महाकवि केशवदास जी, कवि ईसुरी रहे हैं जिनकी रचनाओं का विवेचन निम्नलिखित है।

स्वामी अग्रदास जी महाराज- मध्यकाल की समृद्ध संत परम्परा के रसिक सम्प्रदाय के प्रमुख कवियों में कवि अग्रदास स्वामी विशेष स्थान के अधिकारी हैं। बुन्देलखण्ड में यह रसिक साधना दो सौ वर्षों तक चरम उत्कर्ष पर रही है। गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन स्वामी अग्रदास जी महाराज का बुन्देलखंड के संतों महन्तों के साथ विशेष सम्बन्ध रहे हैं। इन्होंने भक्ति के माध्यम से जन जन में संस्कारों के बीजारोपण करने का अभिनव कार्य किया है। यह सम्प्रदाय अद्वैत का ही एक प्रतिष्ठित रुप है, जिसमें ज्ञान, भक्ति, ईश्वर उपासना, उपदेश आदि विद्यमान हैं। रसिक साधना का साध्यतत्व दिव्य दम्पति सेवा और युगल केलि के लोकोत्तर रस का आस्वादन है। इस साधना में मनुष्य की प्रवृत्ति भगवत्कृपा से होती है। संतों के अनुग्रह से भक्त में अपेक्षित गुण स्वयंमेव आ जाते हैं। साधक सांसारिक सम्बन्धों को त्याग कर हरिजनों की सेवा में लीन हो जाता है। उसका हृदय शुद्ध हो जाता है। अग्रदास जी ने रसिक साधना की चार अवस्थाएं बतायी हैं- 1. आचार्य प्रपत्ति- ज्ञान दशा, इसमें ईश्वर जीव जगत का बोध गुरु द्वारा। 2. सम्बन्ध दीक्षा – वरण दशा, इसमें भाव देह से आराध्य का वरण। दिव्य लीला से परिचय। 3. साकेत लीला – प्राप्ति दशा, इसमें भावानुकूल सेवा। 4. लीला सुख भोग- प्राप्य अनुभव दशा, सेवा सुख का आनन्द प्राप्त होता है, यह चरम दशा मानी जाती है।[7] अग्रदास ग्रंथावली में तीन प्रमुख कृतियां दी हैं – कुण्डलियां, ध्यान मंजरी और साधन गीतावली तथा संस्कृत के दो ग्रंथ-रहस्यत्रय, अष्टयाम पठनीय हैं। अग्रदास की कुण्डलियां देखिए –

''कुतिया चोरन मिल गयी, को कब पैरो देय।
को कब पैरो देय, जीव जा मिलो अविद्या।
काम क्रोध मद लोभ, लगे लूटन पुर विद्या।
हतौ ब्रह्म कौ अंश कुमत नीचन संग कीनौ।
लोलुप इन्द्री स्वादि सदन सूनौ कर दीनौ।
अग्र कहैं तज स्वान गत नर हर पद दृढ़ सेय।
कुतिया चोरन मिल गयी,को कब पैरो देय।''

अध्यात्म जगत में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। सत्संगति पर संतों ने खूब लिखा है। आध्यात्मिक कर्मयोग में व्यक्ति को अपने कर्म-योग: कर्मसु कौशलम् और कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन की धारणा को आत्मसात करना पड़ता है। हमारा स्वरुप ब्रह्म का अंश है, इसलिए इस श्वान गति को छोड़ना होगा। और मन, बुद्धि और अहंकार से बने इस दर्पण को साफ करने की कवायद शुरू करके पहरेदारी भी करनी होगी। आगे वह कहते हैं कि-

''जो दिन जाय आनन्द में जीवन कौ फल सोय।
जीवन कौ फल सोय आनन्द निधि उर में धारै।
मंत्री ज्ञान विवेक अशुभ अज्ञान निवारै।
पद्म पत्र जिम रहै काल सम विषय पिछानै।
जग प्रपंच तै दूर सत्य सियापति जानै।
अग्र अजा के स्वाद से तृप्त न देखौ कोय।
जो दिन जाये आनन्द में जीवन कौ फल सोय।''

साधक के व्यक्तित्व में अच्छे गुणों का विकास हो। सत्वगुण की वृद्धि और रजस् और तामस गुणों को कम करने के लिए सम्यक् दर्शन, हृदय में भक्ति का भाव आवश्यक है। क्यों कि श्रद्धावानम् लभते ज्ञानं। गुरु ज्ञान, शक्तिपात, सर्वशक्तिमान परमब्रह्म की कृपा, प्रातिभ ज्ञान का उदय व्यक्ति को अपने वास्तविक रूप का एहसास दिलाता है, आनन्द की सृष्टि होती है। जीवन सार्थक होता है।

''पर उपदेश कुशल बहुतेरे''- नीति को बड़े ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए वह कहते हैं कि--

आप न जावे सासुरे औरन कौं सिख देंय।
औरन कौं सिख देंय हियौ अपनों नहिं सोधैं।
नख सिख जटति अज्ञान मूढ़ जग कौ परमोधैं।
निज तन आंखन अंध, गैल औरन उपदेसैं।
भव जल पार न रोस, पैर कछु सकत ना लेसै।
अग्र आप स्वारथ सबै परमारथ पूजा लेंय।
आप न जावे सासुरे औरन कौं सिख देंय।

इस प्रकार स्वामी अग्रदास जी ने बुन्देलखंड में आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि कर अद्भुत अद्वितीय कार्य किया है। संत समाज में वह सदैव स्मरणीय रहेंगे।

महामति प्राणनाथ- नवजागरण की शाश्वत प्रतिमूर्ति, धार्मिक, आध्यात्मिक समन्वय के सूत्रधार महामति प्राणनाथ, मध्ययुगीन भारत के अंतिम संत-कवि थे। गुजरात जामनगर के दीवान श्री केशव ठाकुर, धनबाई की कोख से क्षत्रिय परिवार में जन्मे। उनकी माता धनबाई एक धर्मनिष्ठ महिला थी। आपका वास्तविक नाम मेहराज ठाकुर था। आपके परिजन वैष्णव संप्रदाय से संबंधित थे।

बाल्यकाल से ही प्राणनाथ का झुकाव धार्मिक प्रवृत्ति की ओर था। आपने राधाबल्लभ सम्प्रदाय के स्वामी हरिदास जी के शिष्य स्वामी देवचन्द्र जी को अपना गुरु बनाया जो बाद में निजानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। महामति प्राणनाथ ने प्रणामी सम्प्रदाय, पंथ की स्थापना कर सभी धर्मों के दिव्य ज्ञान का निचोड़ प्रस्तुत किया। जब वह बुन्देलखंड आये तो महाराजा छत्रसाल ने महामति प्राणनाथ को अपना गुरु बनाया और औरंगजेब को परास्त करने के लिए उनका आशीर्वाद लिया। उनके समर्पित शिष्य महाराजा छत्रसाल जब औरंगजेब के अत्याचारी शासन के खिलाफ लड़ना चाहते थे लेकिन उनके पास सेना व शस्त्रागार के निर्माण के लिए धन नहीं था उन्होंने प्राणनाथ से आशीर्वाद व सहायता मांगी। प्राणनाथ ने छत्रसाल को आशीर्वाद देते हुए कहा– ''घोड़े पर सवार होकर कल सुबह तुम जितनी भूमि का फेरा लगाओगे वह भूमि हीरे से भरी होगी। इसप्रकार स्वामी प्राणनाथ के आशीर्वाद से पन्ना की धरा आज भी हीरों की खान कही जाती है। महामति प्राणनाथजी 11 साल तक पन्ना में रहे। महाराजा छत्रसाल ने उनका मंदिर 1692 में बनवाया। बाद में उन्होंने इस मंदिर के एक गुंबद के अंदर समाधि ली। पन्ना मध्यप्रदेश में महामति प्राणनाथजी का मंदिर महत्वपूर्ण तीर्थ है जहाँ शरद पूर्णिमा पर देश विदेश से आने वाले भक्तों की भीड़ रहती है। मंदिर में गुंबदों और कमल संरचनाओं की कलाकृतियों, स्थापत्य शैली का अद्भुत नमूना है। महामति प्राणनाथ जी ने अपने वचनों में कहा कि–

''इक सागर कह्यो जोत को, दूजो शोभा सुन्दर।
कै तरंग उठे इन रंगों की, खोल आंख देखो अन्दर।।''

परमतत्व हमारे अंदर विद्यमान है। आंख खोलकर अन्दर देखने की आवश्यकता है। वैषम्य दुख का मूल कारण है। निजबोध ही दुख मुक्ति का उपाय है। संशय रहित होकर साधना करनी चाहिए। वह व्यक्ति के मन के अहंकार, तृष्णायें दूरकर वास्तविक ज्ञान दृष्टि की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि –

''मोह अहं गुण इन्द्रियां, करे फैल पसू परवान।
फिरें अवस्था तीन में, ए जीव सृस्ट पहचान।।''
अब छोड़ो रे मान गुमान ज्ञान को, ऐसी खाड बड़ी है भाई।
एक डारी त्यों दूजी भी डारो, जलाए देओ चतुराई।।''

इस प्रकार ज्ञान दृष्टि में आत्मा– ब्रह्म एक व अद्वितीय है। अनन्त वासनायें, आशा आकांक्षा, राग द्वेष की क्रिया से अन्त:करण को उन्मुक्त करने पर ही सत्य का दर्शन होता है।

प्राणनाथ जी ने ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी से मानव जीवन के कलुष का परिमार्जन करने के साधनों पर बल दिया। धर्म जिज्ञासा और ब्रह्म जिज्ञासा दोनों को जन जन के समक्ष प्रस्तुत कर दर्शन का विचार पक्ष और धर्म का आचार पक्ष दोनों के समन्वय को समझाया।

''खसम एक सबन का, नहीं दूसरा कोय।
ए विचार तो करें, जो आप सांचे होय।।''

अत: नैतिकता पूर्ण आचरण ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। पूर्ण सत्ता प्रकाश रुप है। खसम से तात्पर्य ईश्वर सबका है। दो की सत्ता है ही नहीं। ज्ञान दृष्टि का उदय होते ही सत्य स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है। आपने अपने अद्वैत दर्शन में हद से बेहद की ओर उन्मुख होने का संकेत किया है। महामति प्राणनाथ जी के समर्पण के भावों को देखिए –

''ए बानी बेहद प्रगटी, इन्द्रावती मुख।
बहुत बिधे हम रस पिए, बेहद के सुख।।''

महामति प्राणनाथ जी की वाणियों का संग्रह श्री कुलजम स्वरुप (कुल+जमा) में 524 प्रकरण 18758 चौपाईयाँ हैं। इसमें विश्व के समस्त धर्मावलंबियों की मान्यताओं, धारणाओं को समाहित कर महामति प्राणनाथ जी ने वेद कतएसं ग्रंथों का प्रकटीकरण कर अद्भुत वाग्मिता का परिचय दिया है।

बाघ बकरी एक संग चरै, कोई न करे किसी सौं बैर।
पसू पंखी सुखी चरें चुगें, छूट गयो सब को जेहेर।।
सन्मुख सब एक रस भये, भाग्यो सब विस्व कौ बोध।
घर–घर आनन्द उछव, कुली पोहोरो काढ्यो सब क्रोध।।[8]

महामति प्राणनाथ जी ने वैश्विक एकीकरण हेतु सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक अभियान चलाया। अपने अमृत वचनों से परब्रह्म के सत्य को ज्ञान की कसौटी पर परखने और धर्म के सूत्रों की छोटी छोटी व्याख्यायें कर जनमानस की सोच को परिष्कृत किया।

सन्तकवि अक्षर अनन्य– अक्षर अनन्य एक सन्तकवि एवं दार्शनिक थे। इनका बचपन ओरछा में बीता। सेंवढा में सनकुंआ के मोहक तट पर अक्षर अनन्य कवि नरेश पृथ्वीसिंह के आश्रय में रहे तथा उन्हीं की छत्रछाया में रहते हुए साधना सहायक बनकर समर्थ संत–सखा के रुप में मार्गदर्शन करते रहे। आप पन्ना नरेश छत्रसाल बुन्देला के समकालीन रहे। अध्यात्म विद्या हेतु आपने कर्मयोग, भक्ति, उपासना, योगाभ्यास के साथ ज्ञानयोग, विज्ञानयोग, ध्यानयोग, विवेकदीपिका, ब्रह्मज्ञान, अनन्य प्रकाश, राजयोग, सिद्धांतबोध आदि ग्रंथों की रचना की तथा अनेक उपाय बताए। पीताम्बरा पीठाधीश्वर श्री स्वामी जी महाराज कहते हैं कि जब साधक अद्वैत निष्ठ हो जाता है तो सारे भेदभाव, ऊंच–नीच जातिगत वर्ण भेद सब मिट जाते हैं क्योंकि यह सारे भेद अविद्या के कारण बने हुए हैं।

अद्वैत विद्या की प्राप्ति होने पर जैसे प्रकाश से अंधेरा छंट जाता है वैसे ही द्वैत से होने वाले सारे भेद नष्ट हो जाते हैं। साधक कृतकृत्य हो जाता है। ऐसे महापुरुषों को सिद्ध या महात्मा की संज्ञा प्रदान की जाती है।[9]

महात्मा एवं संतकवि अक्षर अनन्य ने दतिया राज्य के अंतर्गत सेंवढा के राजा पृथ्वीसिंह को ''**ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलः**'' का उपदेश देते हुए संसार के मिथ्यापन को सिद्ध किया था–

''जग मिथ्या करतार सत्य लहि, ज्ञान कहत हैं यासौं।
जग प्रपंच में भूल न रहिए सूरत बांधिए बासौं।।''

जगतगुरु शंकराचार्य जी ने कहा कि ब्रह्म जीव से अभिन्न हैं। ऐसे अभेद ज्ञान को स्वरुप ज्ञान कहते हैं। इसे ही उन्होंने नाना उदाहरणों से सिद्ध किया तथा सबके सम्मुख बाघ के बच्चे का भेड़ के झुण्ड में मिल जाने पर जैसे वह अपनी पहचान भूल जाता है परन्तु जब गुरु रुपी बाघ मिलकर वास्तविकता बताते हैं तो वह अपने वास्तविक स्वरूप को जान जाता है, प्रत्यभिज्ञा होती है इस दृष्टांत द्वारा अक्षर अनन्य जी स्पष्ट करते हैं –

''जैसे एक बाघ को बच्चा डरो गडरिया पायो।
जात कर्म भूले उहि अपने गाडर मान बंधायो।
बाघ पराक्रम कछु ना जाने मांसहि दांत न चंपै।
चलै फिरै गाडर विच डोलै सदा गडरिया कम्पै।
एक दिना वन चरत फिरत ते तहां बाघ एक गाज्यौ।
भगे गड़रिया ले सब गाडर तिनहूँ में यह भाज्यौ।
तब उहि बाघ बाघ यह देख्यौ आपु सामानहिं सोहै।
भूल्यो जाति जान यह पकरियो कही बात तू को है।
तब यह बाघ बाघ नहीं जाने गाडर बोक बतावे।
सुनि उहीं रही जाति यह बिसरयो देखो हो कहि आवे।
तब उहि बात बताई आपु गति जाति कर्म समझायो।
भयो बाघ को बाघ गयो भ्रम तब अपनो पद पायो।
त्यों जग जीव अंश ईश्वर के परे अविद्या मांही।
मान रहे भ्रम जात वेश क्रम आपै जानत नाहीं।
बाघ समान मिले जब सद्गुरु तब सब भरम भजावै।
करै अविद्या विद्यमान ह्वै जीव ब्रह्म पद पावै।
जीव ब्रह्म निज जाति एक है यह संदेह न मानो।
मिले अविद्या जीव भरे मिल विद्या ब्रह्म बखानो।
विद्या नाम पढ़न को नाहीं नहिं पोथी न पुराना।
जैसे को तैसा मत समझै यह विद्या विज्ञाना।
अक्षर अनन्य कहत यह गाथा बीच भ्रम कर दूरी।
पृथ्वीचंद नृपराज जानिए यहै ज्ञान गति पूरी।।''

इस प्रकार अद्वैत ज्ञान का सारा ज्ञान तत्व साररुप में उपरोक्त पंक्तियों द्वारा समझाया गया है। अक्षर अनन्य जी की साधना शैवागम की थी। त्रिपुरा शक्ति की उपासना द्वारा आपने अनेक शक्तियां प्राप्त की थीं। सम्पूर्ण जगत शिव शक्ति का ही परिणाम है जैसे एक सोने के अनेक आभूषण परिणाम रुप में हम देखते हैं। ''आत्मकृते परिणामात्''– आत्मा की कृति द्वारा परिणाम होने से जगत ब्रह्म स्वरुप है। वैसे ही आपने दुर्गा सप्तशती के अनुवाद पाठ में कहा है –

बिना तत्व ज्ञान प्राणी, भ्रमत अनन्य भनै।
धोबी कैसे कुत्ता न घर कौ न घाट कौ।

इन्होंने अद्वैत वेदांत के गूढ़ रहस्यों को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। दुर्गा सप्तशती का हिंदी पद्यानुवाद भी इन्होंने किया है। ये संत कवि माने जाते हैं। इनके ग्रंथों में वैष्णव धर्म के साधारण देवताओं के प्रति आस्था के साथ–साथ कर्मकांड के प्रति झुकाव भी मिलता है।

रूप रेखै नहीं रूप रेखै मही,
रूप रेखै सुकी धीव धारायनी।
दृष्टि आवै नहीं दृष्टि आवे तुही,
दृष्टि आदृष्टि त्रैलोक पारायनी।
नित्य निवृती परवर्ति कारायनी,
निर्गुणी सद्गुणी भेष धारायणी।
अक्षरो अनन्य अद्वैत शक्ति प्रभु,
सो नमो हो नमो ओ मातु नारायणी।''
सर्वदास्ते चित्तं नित्य ही सर्वदा,
सर्वदानन्द यं देव दारायनी।
सर्व सिद्धीन में ऐश्वर्य दा सर्वदा,
सर्वदा सर्व उद्योत सारायनी।
सर्वदा सो प्रकाशं प्रभा वंदिता,
वेद वेदांत सिद्धांत सारायनी।
सर्व कर्तरी श्री सर्व शक्ति स्वयं,
सो नमो हो नमो ओ मातु नारायणी।''

संत कवि अक्षर अनन्य जी स्वयं विरक्त संसार त्यागी महात्मा थे। उन्होंने प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृत्ति मार्ग दोनों पर साधिकार खूब लिखा है। आप वेदांत, योगशास्त्र, धर्म, अध्यात्म, दर्शन, कर्मयोग, भक्तियोग व अध्यात्म के क्षेत्र में मर्मज्ञ विद्वान थे। एक सिद्ध योगी,सफल साधक की तरह जटिल विषय को बड़ी सरलता के साथ प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। सहज सरल सुबोध भाषा शैली का उदाहरण देखिए–

करम की नदी जामें भरम के मौर परै,
लहरें मनोरथ की कोटिन गरत है।
काम, शोक, मद, महामोह सों मगरतायें,
क्रोध सो फनिन्द जाको देवता डरत है।
लोभ जल पूरन, अखण्डित अनन्य भनै,
देखें वार-पार ऐसी धीर न धरत है।
ज्ञान ब्रह्म सत्य जाके ज्ञान कौ जहाज साजि,
ऐसे भवसागर सें विरले तरत हैं।''[10]

अक्षर अनन्य जी जीवात्मा द्वारा उसकी अज्ञानता के कारण होने वाले सुख और दुख के अनुभव का विस्तार से वर्णन करते हैं। जीव द्वारा अद्वैत के सामरस्य को समझना, बोधात्मक संकोच को हटाना, अपने विश्वमय और विश्वोर्तीर्ण स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा (पहचान) करना आवश्यक है। अद्वैत वेदांत एवं शैव दर्शन के त्रिक् सिद्धांत की अद्भुत व्याख्या अक्षर अनन्य के शब्दों में-

''ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीनों रूप ये त्रिगुन भेद,
त्रिगुन कौ रूप एक निर्गुण निदान है।
एक ही तै तीन तीन मिलिही कै एक होत,
तीन चार नाहीं एक कारन प्रमान है।
जैसे एक सूत को जनेऊ तीन ताग जान,
तीनि हू कौ सूत एक जाहिर जहान है।
अक्षर अनन्य ज्ञानवंत गति एक लहै,
भिन् भिन्न मानत थे मानस अजान है।''

अक्षर अनन्य ने बुन्देली के साथ संस्कृत में भी अद्वैत दर्शन पर केन्द्रित छंद रचना की है --

''अध्यात्म ज्ञान हीनो यः मिथ्या ज्ञानी स कथ्यते।
अध्यात्म योग युक्तश्च स ज्ञानी श्रुण केशव।।
नास्ति ज्ञानी समो ब्रह्मा, नास्ति ज्ञानी समो हरि,
नास्ति ज्ञानी समो रुद्रः, ना भूतो ना भविष्यति।।''

ब्रह्म सर्वव्यापी है। अध्यात्म योग को साधते हुए, हम सब अपनी जीवन ज्योति के रहते उसकी पहचान कर लें यही संत कवि अक्षर अनन्य जी का कथन है।

केशव दास जी- श्रुति स्मृति का आश्रय लेकर अद्वैत वेदांत के तात्विक सिद्धांतों को आचार्यों ने न सिर्फ अनुभव किया वरन् पारमार्थिक दृष्टि से जीव ब्रह्म की सत्ता एक होने पर दोनों के एकत्व का घट घट में उसी एक के दर्शन किए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने संपूर्ण जगत को ''सिया राम मैं सब जग जानी, करहु प्रणाम जोर जुग पानी।'' कहकर अद्वैतवाद का समर्थन किया है। रामचंद्रिका में केशव दास जी ने भी ''सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि'' कहकर पारमार्थिक दृष्टि से जीवब्रह्म का एकत्व मानते हुए लौकिक दृष्टि से भगवान का सख्य या दास्य भाव अधिक पसंद किया है। केशव दास जी के आध्यात्मिक विचार हमें विज्ञान गीता और रामचंद्रिका में मिलते हैं रामचंद्रिका के 25 वे प्रकाश में राम वशिष्ठ संवाद में वह कहते हैं -

''सब जानि बूझियत मोहिं राम,
सुनिए सो कहौं जग ब्रह्म नाम।
जिनके अशेष प्रतिबिम्ब -जाल,
तेई जीव जान जग में कृपाल।''

केशव दास जी जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानते हैं तथा अद्वैत वाद के अधिक निकट खड़े दिखाई देते हैं। संसार को वह नश्वर और परिवर्तनशील मानते हुए ईश्वर की रचना कहते हैं -

''तुम्हहिं जु रची रचना विचारि,
तेहि कौन भांति समझौं मुरारि।''

ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या की तरह केशवदास जी संसार को झूठा कहते हैं। वह कहते हैं कि संसार नश्वर है इसके नाम और रुप क्षणभंगुर है परन्तु यह सत्य सा प्रतीत होता है क्योंकि यह किसी सच्चे की रचना है-

''झूठो है रे झूठो जग राम की दुहाई।
काहू सांचे को कियो ताते सांचो हो लगत है।''

इस नश्वर संसार को देखकर उनके हृदय में वैराग्य की अखण्ड धारा बहा करती थी। वह अपने मन को वैराग्यसिक्त तथा उदासीनता की विशेष वृत्ति की ओर संकेत करते थे -

हाथी न साथी न घोरे न चेरे, गांव न ठांव कौ नाम बिलैहै।
तात न मात न मित्र न पुत्र न वित्त न अंगहू संग न जैहै।
चेत रे चेत अजौं चित अंतर अंतक लोक अकेलेई जैहै।
(रामचंद्रिका)

गीता के अनासक्ति योग का केशवदास जी ने समर्थन किया है। साधुओं की संगति शम, सन्तोष तथा विचार को वे मुक्ति का द्वार कहते हैं-

मुक्ति पुरी बर द्वार के चार चतुर प्रतिहार।
साधुन को सत्संग सम, अरु संतोष विचार। (रामचंद्रिका)

रामचंद्रिका में वह शिव के मुंह से कहलवाते हैं-

पूजा यहै उर आन, निर्व्याज धरिये ध्यान।
यों पूजि घटिका एक, मनु किए याज अनेक।

विज्ञान गीता में इसी बात को वह कहते हैं कि -

आनहुं ज्योति हिये अविनाशी, अच्छ निरंजन दीप प्रकाशी।
निश्चल वेद समाधि बिहारै, वासना अंग पतंगनि जारै।

शुद्ध स्वभाव के नीर नहावे, पूरन प्रेम समाधिहिं लावै।
मूल चिदानंद फूलन पूजै और न केशव पूजन दूजे।
(विज्ञान गीता – केशवदास जी)

इस प्रकार से केशवदास जी बंधन का मुख्य कारण मन को मानते हैं और मन में जो नाना प्रकार की वासनायें उत्पन्न होती हैं वे जन्म मरण का कारण बनतीं हैं। वह कहते हैं– ''जग कौ कारन एक मन, मन को जीत अजीत।'' इस मन को वश में करना बहुत कठिन है। मन के वश में हो जाने पर सब इंद्रियां उसी प्रकार बस में हो जाएंगी जिस प्रकार सर्प का मंत्र जानने वाले के वश में विषधर हो जाते हैं–

''हरैं हरैं मनु ऐंचकै, कीजै मन कौ हाथ,
इंद्रिय सर्प समान हैं, गरुड़ लो मन के साथ।''
(विज्ञान गीता – केशवदास जी)

लोक कवि ईसुरी– शाश्वत सत्य का साक्षात्कार करने वाले कवि ईसुरी ने लोक जीवन में अद्वैत दर्शन को अपनी फागों के माध्यम से बड़ी सहजता से प्रस्तुत किया है। लोक मन की अनुभूतियों को सत्य के सांचे में ढाल कर ज्ञान की गंगा प्रवाहित की है। वे जीवन की नश्वरता और मृत्यु के सत्य का रेखांकन बुन्देली शब्दावली में दार्शनिक भावनाओं को नदी के बहाव में धार की तरह देखते हैं–

''जौ है नदी नाव को भेरौ, कऊं हम कऊं तुम खेलौ।
मरती बेर धरत अरथी पै, दिखा न परत दुकेलौ।
घर जैबे की घरी आज जब, एक घरी ना झेलौ।
ईसुर कोऊ काऊ कौ नइयां, सब संसार अकेलौ।''
''एक दिन होत सवई कौ गौनो, होनों और अनहौनो।
जाने परत सासरे सांसऊ, बुरो लगे चाहे नौ नौ।।
जा ना बात काऊ के बस की, हंसी मचे चाए रोनों।
राखो चाएं जौं नौं ईसुरी, दयें इनहिं भर सोनों।।''

कवि ईसुरी वैसे तो किसी धर्म सम्प्रदाय के सिद्धांतों को नहीं मानते थे परन्तु उनकी प्रवृत्ति आध्यात्मिक रही। वह वैदिक धर्म दर्शन को जीवन में न सिर्फ जीते थे वरन् आत्मसात करते थे। प्रारब्ध व संचित कर्मों के भोगों की समाप्ति पर जब यह शरीर पंच तत्वों में मिलता है तब लोक मानस का चिंतन अनूठा होता है। कवि ईसुरी ने इस नाशवान शरीर को गांव के कच्चे मकान की तरह देखा और चमत्कारिक ढंग से अद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया है–

''बखरी रैयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भीत उठी माटी की, छाई फूस चारे की।
वे बन्देज बड़ी बे बाड़ा, तई पै दस व्दारे की।
किबार-किवरियाँ एकऊ नइयाँ, बिना कुची तारे की।
'ईसुर' चाँय निवारों जिदना, हमें कौंन बारे की।
''नइयां ठीक जिन्दगानी कौ, बनो पिण्ड पानी कौ।
चोला और दूसरो नइयां, मानुस की सानी कौ।
जोगी, जाती, तपी, संन्यासी, का राजा रानी कौ।
जब चायें ले लेऊ ईसुरी, का बस है प्रानी कौ।''

लोक हृदय ईसुरी ने अपनी फागों और चौकडियों में अद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठापना परमतत्व के स्वरुप, माया, जगत, जीवात्मा और शरीर की अद्भुत विवेचना स्थान स्थान पर की है।

अद्वैत वह दर्शन है जिसे हम पुस्तकों में पढ़कर, बुद्धि द्वारा नहीं जान सकते इसके लिए अस्तित्व की उच्च अवस्था, ब्रह्म की सार्वभौमिक चेतना आवश्यक है। सारी इंद्रियां व मन जब शिव संकल्पमय हो जाता है, जिसमें आप, मैं, हम, वे, यह,सब सहित संपूर्ण ब्रह्मांड विश्वमयता व विश्वोन्मुख हो जाता है। भेद के स्थान पर अभेद अवस्था जहाँ दृश्यमान होने लगती है। दुनिया के सारे अंतर,सारे भेद ख़त्म हो जाते हैं और अद्वय, शक्ति, शिव,ब्रह्म की अभिव्यक्ति अहं ब्रह्मास्मि के रूप में होने लगती है,यह अद्वैत की अवस्था है। इन भावों को हमारे बुन्देलखंड के असंख्य कवियों ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। एक लेख में समग्र कवियों का मूल्यांकन सम्भव नहीं अत: यह विषय हरिअनन्त हरि कथा अनन्ता की तरह अत्यंत व्यापक है। इत्यलम्

सन्दर्भ –

1. मदन रस बरसै–पृष्ठ संख्या 68–82 तक
2. बुन्देल वैभव – प्रथम भाग, रचयिता–गौरी शंकर द्विवेदी, पृष्ठ–55–76
3. चंदेलकालीन लोकमहाकाव्य आल्हा प्रमाणिक पाठ–प्रोफेसर नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृष्ठ–5
4. बुन्देल वैभव भाग–1 श्री गौरीशंकर द्विवेदी, पृष्ठ 49–50
5. ओरछा स्टेट गजेटियर, पृ.11 में वर्णित
6. भारतीय साहित्य–पत्रिका, सम्पादक–श्री माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ – 55
7. अग्रदास ग्रंथावली – डॉ. बलभद्र तिवारी, पृष्ठ –12–13
8. महामति प्राणनाथ– डॉ. विद्यावती मालविका, पृष्ठ 25–58
9. लेख संग्रह – पीताम्बरा पीठाधीश्वर श्री स्वामी जी महाराज, पृष्ठ – 255–260
10. बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास – डॉ. रामनारायण शर्मा, पृष्ठ – 149–150

– लेखिका वरिष्ठ साहित्कार है।
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पं दीनदयाल उपाध्याय, शासकीय कला एवं वाणिज्य अग्रणी महाविद्यालय सागर (म.प्र.) पिनकोड –470001
मोबाइल नंबर –9425693570

■

आलेख

पाणिनि का भाषा दर्शन और लोकजीवन

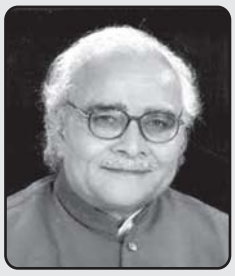

डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी

भाषा के इतिहास में पाणिनि को युगप्रवर्तक के रूप में नमन किया जाता है। भाषा और शब्द का जैसा गहरा विवेचन पाणिनि ने किया था [शब्दसिद्धि, प्रत्ययों की भूमिका, प्रकृति-प्रत्यय का सिद्धान्त, लिंगानुशासन, ध्वनि अथवा स्वर-प्रक्रिया, उच्चारण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का वर्गीकरण], वैसा उनसे पहले विश्व में कहीं नहीं मिलता। पाणिनि के सूत्रग्रन्थ ''अष्टाध्यायी'' में उस समय के ग्रन्थ और ग्रन्थकारों तथा वैदिक-शाखा-प्रवर्तकों, अपने से पूर्व के वैयाकरणों तथा उनके ग्रन्थों [भिक्षुसूत्र तथा नटसूत्र] आदि के उल्लेख हैं। पाणिनि ने अपिशालि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, भारद्वाज, शाकटायन, स्फोटायन आदि आचार्यों के साथ ही कल्पसूत्र, मीमांसा आदि का भी उल्लेख किया है लेकिन ध्यान रखने की बात यह है कि उस समय के लोकजीवन के व्यवहार, जनपद, पर्वतनाम, नदी, ग्रामनाम, नगर और वन, उससमय के सिक्के, उस समय के काल-वस्तु-क्षेत्र के परिमाण आदि के उल्लेख अष्टाध्यायी में हैं।

आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर अनुसंधान किया था, और ''पाणिनिकालीन भारतवर्ष'' नामका शोधग्रन्थ लिखा था, उसमें उन्होंने अष्टाध्यायी में आये शब्द-संकेतों को आधार बना कर तत्कालीन भारत की आचार-प्रणाली, विचारप्रणाली, विश्वास-प्रणाली, अभिव्यक्ति-प्रणाली और रहनसहन, जीवनशैली का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है! ईसापूर्व पांचवी- शताब्दी का भारत कैसा था? पाणिनि ने उस समय के लोकजीवन पर प्रामाणिक सामग्री अष्टाध्यायी में प्रस्तुत कर दी है। स्पष्ट है कि पाणिनि का भाषा-चिन्तन एकांगी नहीं है, जीवन की समग्रता में है। वे भाषा के संबंध में चिन्तन कर रहे हैं किन्तु लोकजीवन उस चिन्तन की पृष्ठभूमि में है। यदि उनके चिन्तन की पृष्ठभूमि में लोकजीवन न होता तो क्या वह भाषा-चिन्तन इतना गहरा और व्यापक होता? विचारने की बात है कि भाषा कहाँ रहती है? भाषा लोकजीवन में रहती है। भाषा का जन्म भी लोकजीवन में हुआ और भाषा का विकास भी लोकजीवन में ही होता है।

आचार्य वासुदेवशरण जी ने स्थापित किया कि पाणिनि लोकजीवन के गंभीर अध्येता थे! वे न केवल वैयाकरण थे, अपितु लोकजीवन के द्रष्टा थे। यही कारण है कि वे भाषा के चिन्तन को इतने व्यापक और गंभीरता में ले जा सके! ध्यान देने की बात है कि भाषा किताबों में नहीं, लोकजीवन में रहती है, जीवन बहता है और उसके साथ ही भाषा भी बहती है और संस्कृति भी बहती है! भाषा, संस्कृति और जीवन अविच्छिन्न हैं ! उनका चिन्तन भी अलग-अलग नहीं किया जा सकता!

यदि ऐसा न होता तो संस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश क्यों बनती? विभिन्न जनपदीय बोली, लोकभाषाएँ, उर्दू, हिन्दी आदि का विकास लोकजीवन में कैसे होता? भारत के भाषाचिन्तन के अन्तर्गत वे सभी प्रादेशिक-भाषाएं भी तो सम्मिलित हैं! सभी बोली और लोकभाषाएं भी सम्मिलित हैं! पाणिनि का कथन है कि- शब्द को शक्ति लोक से प्राप्त होती है। भाषा लोकजीवन में व्याप्त है! सामान्य और विशेष को स्पष्ट करते हुए पाणिनि ने कहा कि जो बहु व्यापक है, वह सामान्य है और जो अल्प व्यापक है, वह विशेष है। बहुव्यापको सामान्यः। अल्पव्यापको विशेषः। सभी मनुष्य मनुष्य हैं, यह सामान्य तत्त्व है परन्तु कोई भी दो मनुष्य एक जैसे नहीं हैं, यह विविधता, विचित्रता अथवा विशेषता है!

यहाँ ध्यान देने की बात है-प्रत्यक्षदर्शी लोकानाम्। पाणिनि ने देशाटन करके भारत के विभिन्न जनपदों की भाषा, उनके रीति व्यवहार, वेशभूषा, उद्योग धन्धे तथा उनके व्यक्ति और जाति वाचक नामों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। इसीलिए उनका अष्टाध्यायी ग्रन्थ न केवल शब्दानुशासन की दृष्टि से परिपूर्ण है, अपितु वह तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति का विश्वसनीय और प्रामाणिक इतिहास भी है।

पाणिनि के भाषा-दर्शन में लोकजीवन की समग्रता को हेमचन्द्र सूरि ने पहचान लिया था, यही कारण है कि उनका ''सिद्ध हेमा-शब्दानुशासन'' भाषा-चिन्तन के साथ ही 11 वीं शताब्दी के

गुजराती लोकसाहित्य और संस्कृति का कोश बन गया है। गुजराती त्यौहार घोगा बापाजी, विवाह गीत, पारंपरिक, देवी-देवता और उनके समारोह, ऋतुगीत, सौराष्ट्र और दक्षिण गुजरात की लोक-कहानियां परिवार-व्यवस्था और सास-बहू के संबंध सभी कुछ शब्दानुशासन में है। शब्द के विवेचन के लिए उन्होंने जो उदाहरण लिये हैं, वे लोकजीवन के हैं। नायिका पार्वती से प्रार्थना कर रही है कि हे गौरी! इस जन्म में और दूसरे जन्म में भी ऐसा पति दीजिए, जो मतवाले, निरंकुश हाथियों से हँसता हुआ भिड़े-**आयहि जम्महि उन्नहि वि गोरि सु दिज्जहि कंतु गय मत चंतकु संह जो अडइ हसंतु।** नायिका कभी यह नहीं चाहती कि पति युद्ध में से जान बचाकर भाग आए और उसे सखियों के सामने लज्जित होना पड़े। वह तो यह चाहती है कि इससे तो अच्छा है कि उनका पति युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो, ताकि वह समाज में गर्व से जी सके-

भल्ला हुआ जू मारिया बहिणि म्हारा कंत।
लज्जेज तु वयसि अहुर जइ भग्ग वरू एंतु ।

भाषा के विषय में पाणिनि का कथन है कि शब्द को शक्ति लोक से प्राप्त होती है। शब्द-प्रयोग लोक-जीवन में होता है और लोक-जीवन के जिन संदर्भों में उसका प्रयोग होता है, वह शब्द उन अर्थों में रूढ हो जाता है। भाषा लोकजीवन में व्याप्त है, वाचिक-परंपरा के प्रवाह में बहते शब्द और अर्थ देश तथा काल के विस्तार में बहुत दूर तक पंहुचते हैं और कायाकल्प के साथ नया अर्थ ग्रहण कर लेते हैं फिर उनका प्रयोग परिनिष्ठित-साहित्य में भी होने लगता है। इस प्रकार संस्कृत अथवा परिनिष्ठित-भाषाएं प्राकृत बनती हैं और फिर प्राकृतों का मानकीकरण होता है। जब परिनिष्ठित-साहित्य की भाषा एक खास वर्ग की भाषा बन जाती है, जनता से दूर चली जाती है , तब उसकी जीवनी-शक्ति के स्रोत सूख जाते हैं और जीवन से कहीं दूर छिटक जाती है, शब्द लिखा हुआ रह जाता है किन्तु अर्थ कहीं पीछे छूट जाता है।

भाषा लोक-जीवन की प्रतिध्वनि है, लोक-जीवन का प्रतिबिंब और सामाजिकता का गतिशील माध्यम है। लोक-जीवन की गतिविधि से, लोक-जीवन की उथल-पुथल से भाषा का भविष्य जुड़ा हुआ है। इतिहास में जातियां उठती हैं,चलती हैं तो उनके साथ भाषाएं भी उठती और चलती हैं। जातियां मिलती हैं और बिछुड़ती हैं तो उनके साथ भाषाएं भी मिलती हैं और बिछुड़ती हैं, एक जाति दूसरी जाति से प्रभावित होती है। तब उसकी भाषा भी प्रभावित हो जाती है। जातियां और उनके सांस्कृतिक-तत्त्व एक दूसरे में समाहित होते हैं तो उनकी भाषाओं के शब्द भी एक दूसरे में समाहित हो जाते हैं। विभिन्न समुदायों के विभिन्न स्तर होते हैं, इसलिए हमें भाषा में भी वे स्तर दिखलायी देते हैं, नई पीढ़ी आती है, नया आदमी आता है, एक आदमी की भाषा दूसरी भाषा के संपर्क में आती है, तो एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में आ जाते हैं एक भाषा की शब्द-संपदा दूसरी भाषा में आ जाती है। एक जनसमूह की भाषा की अभिव्यक्त संपदा दूसरे जनसमूह की भाषा में प्रवेश करती है नए शब्द आते हैं नए उच्चारण आते हैं भाषा की नई भंगिमा आती है। जीवन बह रहा है, भाषा भी बह रही है, इसमें निरंतर परिवर्तन आ रहा है।

शब्द-प्रयोग लोक-जीवन में होता है और लोक-जीवन के जिन संदर्भों में उसका प्रयोग होता है, वह शब्द उन अर्थों में रूढ हो जाता है। भाषा लोकजीवन में व्याप्त है, भाषा के तद्भवीकरण की समस्त प्रक्रिया लोकजीवन में होती है, वाचिक-परंपरा के प्रवाह में बहते शब्द और अर्थ देश तथा काल के विस्तार में बहुत दूर तक पंहुचते हैं और कायाकल्प के साथ नया अर्थ ग्रहण कर लेते हैं फिर उनका प्रयोग परिनिष्ठित-साहित्य में भी होने लगता है। इस प्रकार संस्कृत अथवा परिनिष्ठित-भाषाएं प्राकृत बनती हैं और फिर प्राकृतों का मानकीकरण होता है ।

भाषाशास्त्र के सम्बन्ध में एक इस तथ्य का उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि शब्द का विकास लोक-प्रक्रिया (folkloric process) के द्वारा ही होता है। व्यष्टि की संवेदना जब समष्टि की संवेदना बनती है, व्यष्टि का बिंब जब समष्टि का बिंब बनता है, तभी वह शब्द के रूप में अवतरित होता है! भाषा का उदय और विकास कैसे हुआ? ऐसा नहीं है कि भाषा पहले से बनी हुई थी या किसी देवता, या कोई विचारक अथवा किसी राजा ने बना कर हमको सिखा दी थी किसी एक आदमी या किसी एक वर्ग ने भाषा का विकास नहीं किया। आदमी से आदमी मिला, संवाद की जरूरत हुई, उसी प्रक्रिया में भाषा का जन्म हुआ। भाषा का जन्म मनुष्य की पारस्परिकता या आपसदारी से हुआ! भाषा का उदय और विकास साथ-साथ की भावना से हुआ, सहयोग और सामंजस्य की भावना से हुआ, एक दूसरे के समीप आने की भावना से हुआ, भाषा का उदय और विकास कुछ बताने और कुछ सीखने की भावना से हुआ, भाषा का उदय और विकास कुछ कहने और कुछ सुनने की भावना से हुआ! इस पारस्परिकता को हम दूसरे शब्दों में समष्टिप्रक्रिया [Folkloric Process] अथवा सामाजिक-प्रक्रिया भी कह सकते हैं यह प्रक्रिया कहाँ हुई? किसी सरकारी दफ़्तर या विश्वविद्यालय के भाषाविभाग में नहीं हुई, यह प्रक्रिया प्रत्यक्ष लोकजीवन में हुई और

आज भी हो रही है। गाय शब्द का अर्थ गाय ही क्यों होता है ? गाय शब्द का अर्थ बकरी क्यों नहीं होता ? इसलिये कि समष्टि-चित्त में गाय शब्द का यह स्वीकृत है! मैं गाय शब्द का अर्थ बकरी मान लूँ और तुम गाय शब्द का अर्थ भेंस मान लो तो पद-पदार्थ की व्यवस्था ही नहीं रहेगी। प्रमाण समष्टि-चित्त है, हम हिन्दी-जनपद के लोग गाय शब्द का अर्थ गाय ही स्वीकार किये हुए हैं। शब्द का अध्ययन करना ध्वनि-समुच्चय के साथ समष्टि चित्त की गति और प्रकृति का भी अध्ययन है।

देशज शब्द का जन्म लोकजीवन में ही होता है! लोक की जीवन्त भाषा का उदाहरण - गरम पानी तो गरम पानी ही है किन्तु कितना गरम है, इसके लिये लोक में बहुत शब्द हैं, जैसे - चरचरौ, भभकतौ, गुनगुनौ, फुकतौ, सुहाँतौ, ठंडे पानी के लिये - कंटान, गरन्त, काँटे सौ। झगड़े के लिये लोक के पास कितने शब्द हैं - धक्कामुक्की, कहासुनी, लैलै दैदै, चंचमचेंचा, हाथापाई, बाज गयी, फौजदारी, लठालठी, गटापटी, तकरार, मनचाल, महाभारत,,जूझ गये, पमाड़ौ आदि। नींद के लिये लोक के शब्द हैं - ओंघा, घँघेला, झपकी, घैरघुट्ट, कुंभकरनी। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में भाषा-प्रयोग के संबंध में दो सूत्र दिये हैं: **लोकतः प्रमाणम्! लोकविज्ञानाच्च सिद्धम्!** भाषा किताब में नहीं लोकजीवन में रहती है।

मनुष्य धरती पर उगते हुए बीज को तभी से देख रहा है, जब से उसने धरती पर जन्म लिया था। धरती से बीज उगना इन अर्थों में साधारण घटना है कि उसे सभी ने देखा है और बार-बार देखा है, परन्तु उसकी असाधारणता भी यही है कि उसे सभी ने देखा है, लोक ने भी देखा है, शास्त्र ने भी देखा है, पंडित ने भी देखा है मूढ़ ने भी देखा है, धनी ने भी देखा है और निर्धन ने भी देखा है। किसी ने पास-से देखा है तो किसी ने दूर-से देखा है, किसी ने प्रत्यक्ष देखा है तो किसी ने प्ररोक्ष रूप से देखा है और इस निरन्तर देखने के कारण ज्ञान की निरन्तर वृद्धि हुई है। मनुष्य ने जब धरती और बीज के संबंध मे सोचा तब सारा ब्रह्मांड उसकी दृष्टि में था और जब उसने उत्पत्ति और विकास के संबंध मे सोचा तब भी धरती और बीज के बिंब उसकी आंखों में थे। जब उसने प्रकृति के संबंध में सोचा, तब जीवन के बिंब उसके पास थे और इसी प्रकार जब जीवन के संबंध में सोचा तब प्रकृति के बिंब उसके पास थे। इस प्रकार निरन्तर प्रक्रिया में मनुष्य के चिन्तन और ज्ञान का विकास हुआ। मनुष्य के मन पर भी उसके परिवेश का जो चित्र अंकित होता है, वह उसकी समग्र अभिव्यक्ति संपदा (शब्द, उपमा, प्रतीक, कहावत, मुहावरों आदि) में बिबिंत होता है और भाषा की संरचना में इन बिंबों की अनिवार्य भूमिका होती है। उदाहरण के लिये वृक्ष से पत्ता गिरा। पत् धातु का अर्थ है गिरना, अत: गिरने के कारण पत्र संज्ञा बनी। पत्र शब्द से पत्ता, पत्ती, पन्ही, पात, पतिया शब्द निष्पन्न हुए। पुराने जमाने में पत्रों पर सन्देश भी लिखे जाते थे, इसलिये पत्र शब्द का एक नया अर्थ विकसित हुआ चिट्ठी। सभ्यता के विकास की गति में पत्र शब्द और आगे बढ़ा तो प्रपत्र, परिपत्र, पत्रिका, पत्रा, समाचारपत्र, प्रमाणपत्र, नियुक्तिपत्र, शपथपत्र और अधिकारपत्र जैसे शब्द नये संदर्भों के साथ प्रस्तुत होते चले गए और इसी के साथ ताम्रपत्र, स्वर्णपत्र, रजतपत्र तथा लोहे की पत्ती आदि बने। चूँकि पुराने जमाने में पत्तों के बर्तन भी बनाये जाते थे, इसलिये पत्र से ही पात्र शब्द बना। पत्तल शब्द भी उसी कुनबे का है। बाद में पात्र शब्द स्वर्णपात्र, रजतपात्र के रुप मे. विकसित हुआ। पात्र में आधारत्व गुण होता है, इसलिये और आगे चल कर कुपात्र, सुपात्र तथा पात्रता जैसे बने। ढाक के तीन पात, पत्ता खटकना, पत्ता सींचना, पल्लवग्राही- ज्ञान, पत्ता तक न हिलना, पीले पत्ते की तरह निर्जीव होना, पीपल के पत्ते की तरह कांपना और इमली की पत्ती पर मौज करना इत्यादि मुहावरों में पत्तों के कुलगोत्रो की कहानी है। शब्द के तद्भवीकरण की पूरी प्रक्रिया लोकजीवन में ही चलती है!

आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल जी जनपदीय-अध्ययन करते हुए शब्द प्रयोग की परंपरा की खोज करते थे। लोककहानी कहने वाले ने चित्र बनाने के लिये ''लिखना'' धातु का प्रयोग किया। यह प्रयोग सुन कर आचार्य वासुदेवजी ने लिखा कि ''मेरे लिये यह बड़े हर्ष की बात है कि ठेठ बोली में चित्रण के लिए ''लिखना'' जैसी प्राचीन और सुन्दर धातु आज भी क्यों की त्यों जीवित है। केवल साहित्यिक हिन्दी में हमने उसे खो दिया है। संस्कृत में कालिदास से लेकर मध्यकाल तक के काव्यों में तूलिका से चित्र उरेहने के लिये ''लिख'' धातु की परम्परा पाई जाती है। हर्ष की बात है कि जिस खड़ी बोली की प्राण पोषिका मेरठ जनपद की बोली है उस कौरवी बोली में आज भी ''लिखना'' धातु ''चित्रण'' के लिये पंचाल जनपद के अहिच्छा गांव में चिम्मन कुम्हार के मुख से भी हमें यह शब्द सुनने को मिला था। काली रेखोपरेखाओं से बर्तनों पर भांति-भांति के चित्र बनाने का वर्णन करते हुए उसने बताया था कि हमारे यहाँ कुम्हारी बर्तन लिखती हैं। इसी प्रकार देहरादून के जसार प्रदेश के लाखामण्डल गाँव में लकड़ी पर नक्काशी करने के लिये ''उकेरना'' धातु जीवित रूप में प्राप्त हुई।

न सोऽ स्तिप्रत्ययो लोके यःशब्दानुगमाद्दते। यहाँ लोक

शब्द पर ध्यान देना आवश्यक है, लोकजीवन में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, जिसका अनुगम अर्थात् जिसकी प्राप्ति शब्द के बिना संभव होती है। लोकजीवन का एक निश्चित सिद्धांत है कि प्रत्येक अवधारणा, वस्तु या मानसिक भंगिमा के लिए कोई न कोई शब्द लोक की अभिव्यक्तिसम्पदा के पास मौजूद है, हम खोज न पाएं तो यह हमारी सीमा है। लोकमन ही उनकी पहचान करता है और उसे कोई शब्द भी प्रदान कर देता है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने श्री कृष्णानंदगुप्त को पत्र लिखा कि- ''भाषा का प्रश्न लोक-जीवन के अत्यन्त निकट है। या यों कहें कि लोक का संस्कृति में व्याप्त जो ''अर्थ'' है वह भाषा के द्वारा ही प्रत्यक्ष रूप धारण करता है। असीम जनपदीय साहित्य की भांडार-कोठरी में प्रवेश करने के लिये जब हम आतुर हैं तब भाषा के प्रश्न को लोक के विषय से बाहर नहीं समझना चाहिए। नये-नये अनजाने शब्द हमारे परिचय की बाट देख रहे हैं, सुदूर देहात के किसानों की तरह, जो साहित्य के आँगन में सम्मानित स्थान पाने के अधिकारी हैं। इस देश की भूमि में जो शब्द फले-फूले है उन चुस्त और फबीले शब्दों के प्रति यदि हम अनुराग का भाव उत्पन्न कर सकें और इस समय की ठिठुराई हुई उपेक्षा को हटा सके तो आने चाले साहित्य का मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे।

लोकजीवन के आँगन में निरन्तर प्रयोग से किस प्रकार से एक शब्द में नया अर्थ भर जाता है, इसका उदाहरण किन्नर शब्द है!

किन्नर शब्द कहने से आज जो बिंब [शिखंडी] मन पर उभरता है वह प्राचीनसाहित्य में उल्लिखित बिंब से नितान्त भिन्न है! प्राचीनसाहित्य में किन्नर देव -कोटि का गण है, विद्याधर! पुराणों में तो किन्नर- देश का वर्णन है, किन्नर जनपद हिमाचल में है। पुराणों में हिमालय के मध्यभाग को गंधर्वों का देश कहा गया था और किन्नर गंधर्व जाति की एक उपशाखा थी। गंधर्वों की स्त्रियाँ अप्सरा कहलाती थीं। किन्नर वंश के लोग सुन्दर, सुरूप और वीर थे। इनको किंपुरुष भी कहा गया है, लेकिन आज वह अर्थ पीछे छूट गया तो इसका कारण लोकजीवन में नित-नित चलने वाला उसका प्रयोग है [भले ही यह प्रयोग मिथ्या है]।

''पाणिनिकालीन भारतवर्ष'' की भूमिका में आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि - ''लोक ही व्याकरण का सबसे महान् आषपन या थैला है जो शब्दों के अपरिमित भंडार से भरा रहता है। उस लोक के प्रति पाणिनि की निष्ठा और श्रद्धा बढ़ी हुई थी। लोक प्रमाण (जिसे संज्ञाप्रमाण कहा गया है) के आधार पर ही आचार्य ने अपने महान शास्त्र की रचना की। लोक के विषय में पाणिनि की गाढ़ी श्रद्धा ही अष्टाध्यायी की बहुमुखी सांस्कृतिक सामग्री का हेतु है । इस दृष्टि को लेकर आचार्य के नेत्रों में अभूतपूर्व तेज भर गया था। गुप्त - प्रकट जो शब्द सामग्री जहाँ भी थी ,वह सब उन्हें ऐसे प्रतिभासित हो गई ,जैसे पुराकाल के अन्य किसी आचार्य को न हुई थी। शब्दों की खोज में लोक का तिल-तिल परिचय जिसे व्याख्याताओं ने सूक्ष्मेक्षिका कहा है, पाणिनीय कार्यशैली की विशेषता थी जिससे ऐसे सर्वाङ्ग पूर्ण शास्त्र का जन्म हुआ। वैयाकरण के लिये महाभारत में लिखा है-

सर्वार्थानां व्याकरणाद्व्याकरण उच्यते। प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।(उद्योग 43- 36)सब अर्थों का व्याकरण, विवेचन, निर्वचन, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक् स्पष्टीकरण, इसका प्रयत्न करना ही वैयाकरण का कार्य है। ''सर्वार्थ'' शब्द की व्यंजना दूर दूर तक है। इसमें जो जितनी सामग्री भर सके वही उसकी सफलता है। पाणिनि ने लोक की भाषा में प्रचलित अनेक अर्थों'' के ''व्याकरण'' का जो समन्तात् प्रयत्न किया, वह अष्टाध्यायी के सूत्रों में शाश्वत काल के लिये निहित है। भगवान् पाणिनि द्वारा उपज्ञात यह महत् और सुविहित शास्त्र पर्वतघटित कैलास मंदिर के समान विश्व का आश्चर्य है। पाणिनि के सूत्रों की शोभना कृति और अर्थ गौरव उसी स्वयम्भू शिवधाम के समान अनन्त कृति है। शताब्दियों के विस्तृत अन्तराल ने उसकी महिमा का संवर्धन ही किया है। जबतक व्योम में चन्द्र और सूर्य प्रकाशित हैं तबतक पाणिनि का यह शब्दशास्त्र लोक में प्रवर्धमान रहेगा।''

- लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क- 1828 हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सेक्टर- 13-12
पानीपत- 132203(हरियाणा), मो.- 9996007186

चित्रकार साधारण रंगों के समन्वय से जब चित्र बनाता हैं, जिसमें जीवन बोल रहा जान पड़ता है, तब हम आश्चर्य मुग्ध हो उठते हैं। एक सामान्य पत्थर से कुशल मूर्तिकार मानव की सृष्टि करता हैं। एक संगीतज्ञ शब्दों के भीतर छिपे अनन्त माधुर्य और सामन्जस्य, आनंद और रहस्य को विकीर्ण कर देता है। अव्यक्त सौंदर्य को व्यक्त करना, अदृश्य शक्तियों से संबंध स्थापित करना और अमूर्त सत्यों को मूर्त करना ही कला का लक्ष्य है। - **रामनाथ 'सुमन'**

संस्मरण

हिंदी का समाज अपने लेखकों पर गौरव नहीं करता- श्री नरेश मेहता

राकेश शर्मा

ये दिसम्बर के दिन थे। ठंड अपनी जवानी पर थीं। मालवा में ठंड और गर्मी दोनों बहुत प्रचंड रूप धारण नहीं करते। फिर भी जितनी भी गर्मी और सर्दी यहाँ होती है, वह यहाँ के लोगों के लिए प्रचण्ड ही होती है। शायद ऋतुओं का ही प्रभाव होगा कि मालवा का आम आदमी अक्सर समशीतोष्ण ही मिलता है। वह अचानक, व्यग्र उम्र और अचानक कोधाग्नि में नहीं धधकता। इसलिए उसके मूल स्वभाव का पता लगा पाना प्राय: असंभव ही होता है। 1990 को जब मैं, राजस्थान के पिलानी कस्बे से अध्यापक की नौकरी छोड़कर इंदौर आया था, तब मई के महीने में आधी बाँह का स्वेटर, मुझे पहनना पड़ता था। लोग बताते थे कि सन् 1980-85 तक इंदौर में पंखे भी नहीं चलते थे और अब वातानुकूलित कमरा में रहना मुश्किल हो रहा है। अगर तापमान इसी गति से बढ़ा तो इस जीवन का बस, ईश्वर ही मालिक है। यह भान कर कि अपनी तो जैसे-तैसे कट जाएगी, आने वाली पीढ़ियां जाने कैसे गुजारा करेगी। शीतोष्ण जलवायु के कारण ही यहाँ कपड़े की मिलें स्थापित हुई थी। इन मिलों में विश्व स्वर का सूती कपड़ा बनाया जाता था। सूत के ताने बाने के लिए शीतल वातावरण चाहिए। इंदौर में स्थापित कपड़े की मिलों के अवशेष अतीत का गौरव गान कर रहे हैं।

तो खैर, बात तापमान की नहीं, श्रीनरेश मेहता पर करनी है। उन दिनों नरेश जी इंदौर में ही रह रहे थे। यहाँ से प्रकाशित होने वाले 'चौथा संसार' समाचार पत्र के प्रधान संपादक थे। उनके संपादकीय आज के समाचार-पत्रों के संपादकीयों से भिन्न, सांस्कृतिक, साहित्यिक, भाषाई और सर्जना की चिन्ताओं पर केंद्रित होते थे। स्वभावत: उस पत्र के वाचने वाले पाठक भी वैसे ही मानस के लोग थे। आज वह स्थिति नहीं है। संपादकीयों की भाषा और उनके सरोकार बिल्कुल भिन्न और नीरस और प्राय: निम्न स्तरीय होते जा रहे हैं। आज के संपादकीयों में अक्सर राजनीतिक चिंताएं ही सर्वत्र दिखायी पड़ती है। भाषा और व्याकरण की चिंताएं तो अब कोई करता ही नहीं। लोगों ने मान ही लिया है कि बदलते हुए वैश्विक परिदृश्य में ऐसा तो होना ही है। यह मान्यता है या लापरवाही कहाँ ले जाएगी ? इस पर भी तो विचार होना चाहिए। लेखक को परिस्थितियों से टकराने का साहस जुटाना चाहिए और उसी पर अडिग भी रहना चाहिए। श्रीनरेश मेहता को हमने इसी रुप में पाया। उन दिनों वे मार्क्सवाद का पथ त्याग कर विशुद्ध भारतीय सांस्कृतिक मन के साथ साहित्य सर्जना कर रहे थे। इंदौर में पुस्तक मेला था। मेले में पाठक से मिलिए कार्यक्रम रखा गया था। स्वभावत: उनसे बड़ा कोई दूसरा लेखक तो इंदौर में था नहीं। बतौर मुख्य अतिथि वे ही आमंत्रित थे। वे कार्यक्रम में आए। उन्हें सुनने के लिए इंदौर के लेखकों और कवियों और साहित्य प्रेमियों की जमात भी आयी। मेला था तो पान्डाल में पुस्तक खरीदने वाले भी आ गए। कुछ लोग जो मेला देखने वाले थे, वे भी शामिल हुए। मजमा में नरेश जी का सारस्वत व्यक्तित्व लोगों को आकर्षित करता था। लोगों ने तरह-तरह के सवाल पूछे। नरेश जी ने सभी के समुचित उत्तर दिए। वे बहुत धीमे और सधे हुए बोलते थे। मानो अपने भीतर ही शब्दों से इजाज़त लेते कि क्या तुम्हें बोलूं ? उनका हर वाक्य सुचिंतन होता। गद्य में काव्य सा आनंद देता हुआ। वे बंगाली कुर्ता और धोती पहने हुए थे। ओठों पर पान की लालिमा थी। धीर गंभीर स्वर और परिमार्जित भाषा। वेश-भूषा सांस्कृतिक भाषा, शुद्ध उच्चारण सुनकर कोई भी कह उठ कि यह व्यक्ति,

सरस्वती का उपासक है। पता नहीं क्यों मुझे हमेशा लगता रहता है कि प्रोफेशन के अनुकूल भाषा और भूषा होनी ही चाहिए। पीताम्बर और या मृगचर्म से सजाधजा सैनिक शोभा नहीं देता। साहित्यिक व्यक्ति की सात्विकता ही उचित लगती है। नरेश जी बहुत दूर से ही माँ सरस्वती के वरिष्ठ पुत्र ही लगते थे। उस दिन प्रसंगवश उन्होंने कविता से संबंधित एक दिलचस्प किस्सा सुनाया। जब उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था तब गाँव धरमपुरी के लोगों ने उन्हें सम्मान सहित बुलाया था। इसी गाँव में उनका बचपन बीता था। गाँव के लोगों का स्नेह उन्हें मिला था। इसका विवरण वे अपने उपन्यासों में कई-कई बार और अनेक रूपों में कर चुके थे। तो खैर, नरेश जी बताते हैं कि गाँव के लोगों ने दावत दी और साँझ को भोजन के बाद, गाँव के लोग एकत्र हुए। महिलाएं भी अपना चौका बर्तन का काम निपटाकर, वहीं आकर बैठ गयी। थोड़ी देर में एक महिला ने कहा कि आप अपनी कविताएं सुनाइए, जिन पर आपको ज्ञानपीठ मिला है। नरेश जी बोले कि यह सुनकर मेरे होश उड़ गए। मुझे अपनी कविताएं याद नहीं थीं। अतुकान्त कविताएं सुनते समय अपना प्रभाव छोड़कर विस्मरण में चलीं जातीं हैं। मैं, सोच रहा था कि आखिर चौका, बर्तन करने वाली इन महिलाओं को मेरी नई कविताएं कैसे समझ आएंगी ? पहले तो मैंने इस प्रसंग को ही टालने की कोशिश की। मगर वे महिलाएं जिद पर थीं कि कविताएं तो आपको सुनानी ही होंगी। मरता क्या न करता की तर्ज पर मैंने कविताएं सुनाने के लिए तैयारी की। अपनी स्मृति पर बहुत जोर डालकर, मैंने उन्हें तीन कविताएं सुनायीं। शायद इससे अधिक मैं सुना भी न सकता और आतुकान्त कविताओं को याद रखना एक बड़ी चुनौती भी होती है। तो खैर, जब मैंने कविताएं सुनाकर अपना पिण्ड छुड़ाया तो उनमें से एक महिला ने कहा कि आपने जो तीन कविताएं सुनाई हैं, उनमें दो तो बेकार थीं। अपना भरती की सुना दी, मगर तीसरी कविता अच्छी थी। इस कविता में मर्म है। बोलते-बोलते नरेश जी रुक गए और श्रोताओं से बोले उस दिन भारत के लोक पर मेरा विश्वास और गहरा हुआ कि लोक के पास नीर-क्षीर विवेक की अद्भुत निधि है। वह सत्य का अन्वेषण कर लेती है। हम लेखकों को लोक शक्ति का अनुमान लगाकर ही सर्जना करनी चाहिए। उस महिला की टिप्पणी सही थी। उसकी टिप्पणी सुनकर मुझे आश्चर्य मिश्रित आनंद मिला। उन तीन कविताओं में दो बहुत हल्की थी। पाठक की प्रज्ञा का जीवन अनुभव मैंने किया।

नरेशजी उन दिनों नरेश जी प्रेम कविताएं रच रहे थे। प्रश्न आया कि जब आप जवान थे तब आपने प्रेम कविताएं नहीं लिखी। अब, जब कि आपको बुढ़ापा आ रहा है, आप प्रेम कविताएं लिख रहे है। इसका क्या कारण है ? सुनकर पहले तो वे मुस्कराएं, फिर बोले, देखो ! जब जवानी थी, तब प्रेम करने से फुरसत नहीं थी। जब प्रेम में या तब प्रेम को लिख नहीं सकते थे। सुनकर सारा श्रोता समाज प्रमोदित हुआ। वे थोड़ा रुके, फिर बोले, भाई ! यह बात तो मैंने विनोद के लिए कही, मगर सच यह है कि अगर आप को अपनी अँगुली देखनी हो तो उसे आँख से एक निश्चित दूरी पर लाना होगा। आँख के बहुत समीप लाकर अँगुली नहीं देखी जा सकती है। समय को रचने के लिए समय के पार जाना होता है। ऐसे ही जवानी के दिनों में जवानी को नहीं लिखा जा सकता। समय को समय में नहीं रचा जा सकता। मसलन, वर्तमान को उसी समय साहित्यिक ढंग से नहीं लिखी जा सकता। इसके लिए एक निश्चित अंतराल चाहिए। यह, अंतराल या फासला ही रचना को परिपक्व बनाता है। तुरंत लिखी गयी बात तो सूचनादायी पत्रकारिता है, वह साहित्य नहीं हो सकती है। किसी विचार को साहित्य बनने के लिए एक निश्चित समय अवधि चाहिए। जब मैं, मालवा में रहता था तब मुझे मालवा नहीं दिखता था। जब इलाहाबाद गया, तब मालवा साफ-साफ दिखा। कुछ ऐसे ही बुढ़ापे में, अब मुझे जवानी साफ-साफ दिखायी दे रही है। इसलिए उस पर कविताएं रच रहा हूँ। प्रेम, कविताओं की सर्जना के पीछे यही मनोवैज्ञानिक कारण है।

नरेश जी को दूसरी बार इंदौर के साहित्यकार श्री हरेराम वाजपेयी की काव्यकृति 'बिना किसी पर्व के' के विमोचन समारोह में सुना। वही सांस्कृतिक परिधान, वही गंभीर मुद्रा और हाँ पान की लालिमा से चर्चित ओंठ। वे मंच पर नीचे मसनद लगाकर बैठे थे। रुई की गादी को अपनी गोद में रखे हुए। नरेश जी को दमा का रोग था। इसलिए वे अपनी गोदी में रखी गादी को छाती के बीच दबाए हुए थे। शायद इससे उन्हें साँस लेने में सहायता मिलती थी। पुस्तक का विमोचन किया। संचालक ने उनकी प्रशंसा में बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कह दिया। अकसर मंचों से यही होता है। अध्यक्ष, मुख्य अतिथि के बारे में खूब प्रशंसात्मक बोला जाता है। कभी-कभी इस स्थिति में शर्मिंदा भी होना पड़ता है। वहीं उस समय भी हुआ नरेश जी सुविख्यात रचनाकार तो थे ही। उन्हें ज्ञानपीठ भी मिल चुका था। अपनी बारी होने पर वे बोले ! कि अभी आप मेरी प्रशंसा में इतना कुछ बोल रहे थे। हिंदी के लेखक की क्या प्रशंसा ? लेखक की गरिमा और सम्मान का ख्याल हिंदी जगत नहीं करता। हिंदी का लेखक समाज के जागरण के लिए जीवन खपा देता है मगर कोई जागरण नहीं होता। कुंभकरण की नींद में सोया है, हिन्दी समाज।

यह समाज, कभी नहीं जागता। अभी मुझे आप इंदौर के किसी चौराहे पर खड़ा होने दो, कितने लोग होंगे जो मुझे पहचानेंगे ? यह बात बोलते समय उनके चेहरे पर एक कष्ट स्पष्ट दिखायी दे रहा था। सचमुच, हमारा समाज हिंदी के साहित्य सर्जकों के प्रति बहुत उदासी नहीं दिखायी देता है। इस बात का अनुमान इससे लगाइए कि व्यक्ति ने मुझसे पूछा था कि महादेवी वर्मा स्त्री हैं या पुरुष हैं ? क्या ऐसे लोगों से आप यह उम्मीद कर सकते हैं कि ऐसे लोग किसी साहित्यिक का सर्जना कर्म कभी भी देखते होंगे ? पढ़ना, गुनना तो बहुत दूर की कौड़ी है। सच में, हम अपने साहित्यकारों के बारे में बहुत कम जानते हैं। जानने की कोशिश भी नहीं करते। इस संदर्भ में मीडिया भी मौन है और जनता बेसुध है।

उन्होंने आगे कहा अरे ! अगर आप अपने सर्जकों का सम्मान करना सीखना ही चाहते हैं तो मराठी और बंगाली समाज से सीखें। ये समाज अपने सर्जकों को बहुत संभाल कर रखते हैं। उनका सम्मान करते हैं। जरूरी देख-रेख भी करते हैं। हिंदी का लेखक भूख से मरे, मगर हिंदी समाज को उसकी कोई परवाह नहीं होती। इतना बड़ा और आत्म मुग्ध समाज दूसरा और कोई नहीं है। इसलिए आप जब भी इस समाज की बात करें, इसके मनोविज्ञान को ठीक से समझ कर ही करें।

बोल तो श्रीनरेश मेहता थे मगर, सोच मैं भी रहा था कि इसी समाज के जागरण के लिए मैं, भी लेखक बनना चाहता हूँ। आज इस देश में सबसे बड़ा समाज हिंदी का ही। कोई पुस्तक आती है तो चिंता होती है कि आखिर इसे खरीदेगा कौन ? पत्रिकाओं के पास पाठक नहीं है। हैं, तो इतने कम कि पत्रिकाएं दम तोड़ रही हैं।

- लेखक, सम्पादक-राष्ट्रीय मासिक 'वीणा', निवास-'मानस निलयम', एम-2, वीणा नगर, इन्दौर-452010, मो. 9425321223

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का साधारण डाक शुल्क एवं रजिस्टर्ड शुल्क रूपये 120/- प्रतिवर्ष सहित कुल रूपये ..... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो.: .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

हिम्मत शाहः अंडर द मास्क

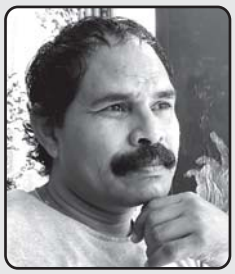

चेतन औदिच्य

विश्व विख्यात कलाकार हिम्मत शाह ने 2023 के, इसी जुलाई माह में अपने जीवन के नब्बे बसंत पूरे किए हैं। कला जगत के लिए महत्वपूर्ण बात है कि नब्बे वर्ष की आयु में भी, वे निरंतर कलाकृतियां सृजित कर रहे हैं। वे भारत के लिंविंग मास्टर हैं। उनकी कलात्मक सक्रियता और विश्व-कला में उनके योगदान को देखते हुए, 'जयपुर सेंटर ऑफ कल्चर एंड आर्ट' (जे सी सी ए) द्वारा उनके जन्मदिवस को एक उत्सव की तरह मनाते हुए, भव्य शो का आयोजन किया गया। इस हेतु हिम्मत शाह के मूर्तिशिल्प तथा कोरोना काल में बनाई गई ड्राइंग्स की 'अंडर द मास्क' नाम से बड़ी प्रदर्शनी लगाई गई। सेंटर की चार मंजिला गैलरी में हिम्मत शाह के प्रसिद्ध मूर्तिशिल्पों और ड्राइंग्स को प्रदर्शित किया गया। चार माह के लिए लगाई गई इस प्रदर्शनी की तैयारी भी अपने आप में अभिनव रही। हिम्मत शाह की कला के अनेक आयामों को शोधपूर्ण तरीके से एक स्थान पर जुटाया गया। सेंटर की निदेशक मोनिका शारदा ने इस मैगा शो का आयोजन किया है। मोनिका शारदा स्वयं एक मूर्तिकार हैं। विगत वर्ष उन्हें राजस्थान ललित कला अकादमी के वार्षिक पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इस प्रदर्शनी में एक सृजनात्मक दृष्टि दिखाई पड़ती है जिसका श्रेय मोनिका शारदा और तरुण शारदा को जाता है। शो में हिम्मत शाह के बहुत पुराने सजृन से लेकर वर्तमान समय में किए गए काम को एक साथ दर्शकों के सामने लाया गया है।

कलाकार जोगेन चौधरी एवं हिम्मत शाह

कोरोना का समय पूरी दुनिया के लिए एक भयावह समय रहा। ऐसे में कोई संवेदनशील कलाकार मूक और निश्चल कैसे रह सकता था ? इसी दौरान हिम्मत शाह ने सैकड़ों की संख्या में ड्राइंग्स बनाई। जिनमें मनुष्य जीवन और उसकी ज़द में आने वाली हर सजीव-निर्जीव वस्तु का आंतरिक पक्ष उद्घाटित किया गया। कलाकार रेखाओं के सहारे एक नऐ विश्व को सामने लाता है। कागज पर जल-रंग और काली शाही से निर्मित ये कृतियां हिम्मत शाह के एक भिन्न पक्ष तथा जीवंत-कोण को सामने लाती हैं। क्योंकि इन्हें करोना काल में रचा गया था, इस बात को ध्यान में रखते हुए 'जेसीसीए' में आयोजित इस प्रदर्शनी को 'अंडर द मास्क' नाम दिया गया है। चर्चित कला इतिहासकार तथा क्यूरेटर ज्योतिर्मय भट्टाचार्य ने इस प्रदर्शनी को क्यूरेट किया है।

प्रदर्शनी के उद्घाटन में यह युति बहुत कलात्मक बन पड़ी कि हिम्मत शाह के पुराने मित्र और विश्व प्रसिद्ध फोटोग्राफर पद्मश्री रघु राय ने हिम्मत शाह के अवदान को देखते हुए एक लाल रंग का रिबिन हिम्मत शाह की हेट के ऊपरी भाग में बांधकर सभी कलाप्रेमियों की ओर से अभिनंदन किया। ओपनिंग सेरेमनी में हिम्मत शाह से कुछ बोलने का निवेदन किया गया तो उन्होंने कृतज्ञता पूर्वक हाथ जोड़कर बस इतना कहा कि 'सब कुछ कहा हुआ मान लिया जाए' यह संक्षिप्त वाक्य अपने आप में एक विराट व्यक्तित्व को सामने लाता है। इसमें यह महान मर्म भी छिपा हुआ है कि उनकी कला अनुभूति के कितने गहरे तल पर विचरती है।

प्रदर्शनी के उद्घाटन समारोह में बंगाल के प्रसिद्ध कलाकार जोगेंद्र चौधरी, मद्रास आर्ट मूवमेंट के कलाकार एवं प्रिंट मेकर आर एल पलानीअप्पन, एमएस यूनिवर्सिटी बडौदा के इंद्र प्रमित रॉय, वरिष्ठ कवि और कला आलोचक प्रयाग शुक्ल, वसुंधरा तिवारी ब्रूटा, छत्रपति दत्ता, पद्मश्री गुलाबो, अतिन बसाक, अमिताभ दास आदि कलाकारों के साथ राजस्थान ललित कला अकादमी के अध्यक्ष मूर्तिकार लक्ष्मण व्यास, पद्मश्री शाकिर अली, विद्यासागर

'अंडर द मास्क' प्रदर्शनी के उद्घाटन अवसर पर अतिथि कलाकार

'अंडर द मास्क' प्रदर्शनी के उद्घाटन अवसर का छायाचित्र

उपाध्याय, भवानी शंकर शर्मा, जगमोहन मथौडिया, विनय शर्मा, लाखन सिंह जाट, चंद्रशेखर सेन आदि कलाकारों की उपस्थिति रही।

हिम्मत शाह की कला यात्रा बहुत लंबी और घर्षण पूर्ण रही है। बहुत छोटी उम्र में ही वे अपने उस जन्म स्थल को छोड़ देते हैं, जहां धरती का पहला बंदरगाह था। दुनिया जिसे लोथल के नाम से जानती है। अनेक स्थानों पर कला की विभिन्न विधाओं के साथ आत्मसातीकरण करते हुए अंतत: वे जयपुर को अपना स्थाई निवास बनाते हैं। यद्यपि हड़प्पा संस्कृति की वह धूसर छाप और नमक के धोरों की स्मृतियां अब भी उनके अवचेतन से निकली नहीं है, अपितु पोत के रूप में कृतियों की सरहदों पर आकर बैठ जाती है। पिछले बीस वर्षों से वे जयपुर में रह कर कला साधना में लीन हैं। बीच-बीच में लंदन जाते रहे हैं। लंदन में उन्होंने अनेक मूर्ति शिल्पों की रचना की है, जिनकी दुनिया भर में ख्याति है।

'अंडर द मास्क' प्रदर्शनी में हिम्मत शाह के 300 ड्रॉइंग्स तथा 12 मूर्तिशिल्पों को प्रदर्शित किया गया है। यह शो भारत के सर्वाधिक मूल्यवान शो में से एक है। इसमें करोड़ों रुपयों की कृतियां प्रदर्शित की गई है। अत: पूरे शो का बीमा करवाया गया है। शो में आठ फिट से लगाकर अतिसूक्ष्म शिल्प कृतियां प्रदर्शित की गई है। बहुत बड़ी और बहुत छोटी मूर्तियों के बीच के परास में हिम्मत शाह की कला का क़द समझा जा सकता है। ब्रॉन्ज में बनी 'क्राइस्ट' शिल्प कृति प्रदर्शनी का सबसे बड़ा आकर्षण है। यह आठ फिट ऊंची जीसस की मुखाकृति है। इसे लंदन में कास्ट किया गया है। इस कृति में जीसस का मुख्य-मंडल निर्निमेष क्लांत-शांत भाव की अभिव्यक्ति करता है। जिसके पार्श्व भाग में एक झुकी हुई सलीब लगाई गई है। माथे पर बंधा उत्तरीय बड़े-बड़े रस्सों के रूप में है। यह शीर्षोत्तरीय कपाल के ऊपर से होते हुए सिर के पीछे तक जाता है। सामने की ओर ऊपरी फॉरहेड में एक कटोरे का आकर है जो उलटे रखे हुए चंद्रमा की भांति दमक रहा है। उसकी सतह स्निग्ध और चमकदार है। चिकनी और सुनहरी सतह के कारण यह सर्वाधिक आकर्षक लगता है। आंख नाक मुख और लंबे चेहरे के नीचे वाले भाग में धे रा बना रही दाढ़ी अत्यंत भाव प्रणव दिखाई पड़ती है शिल्प को निखारने पर मानव और आदित्य और देवी विराट के 17 उस अर्जित होते हुए मालूम पढ़ते हैं इस शिल्प कृति की कीमत 10 करोड़ रुपए रखी गई है।

क्योंकि शुरू से ही हिम्मत शाह प्रयोगशील होकर काम करते रहे हैं। अत: उनके काम करने के माध्यमों में लगातार विविधता बनी रही है। सिल्वर पेंटिंग, टेराकोटा हेड्स, सिरेमिक, ब्रोंज, जले कागज के कोलाज आदि-आदि उनके माध्यम रहे हैं। आज नब्बे वर्ष की उम्र में भी वे प्रयोगशीलता में आगे रहकर नया कर रहे हैं। इस शो में उन्होंने डायमंड का प्रयोग करते हुए मूर्ति शिल्प रचे हैं। 'विजडम फ्रुट' तथा 'हेमर ओन स्क्वायर' प्रमुख कृतियां है। 'विजडम फ्रुट' एक बहुत छोटा मूर्ति शिल्प है। इसमें दुर्लभ ग्रीन डायमंड का प्रयोग किया गया है। सप्त सोपान के शीर्ष पर डायमंड से बनाए फल को संयोजित किया गया है। यह शिल्प इतना छोटा है कि इसे बहुत ध्यान से देखना पड़ता है। जबकि इसका आर्थिक मूल्य 10 करोड़ से भी अधिक है। हिम्मत शाह ने 'विज़डम फ्रुट' की बड़ी कृतियां भी बनाई हैं ,किंतु यह काम सर्वथा नया है। इसको देखने पर सप्तभंगीय का दर्शन और केवल्य की स्थिति समझ में आती है। हिम्मत शाह के शिल्प के साथ सदा से ही यह रहा है कि वे रूप के पार के रूप को प्रदर्शित करते हैं। उनकी कृति का पोत और उसकी आकारिकता का वक्रकोण संगीत के आलाप और लोकधुनों में आए खटके की तरह दर्शक की आंखों में धंसता चला जाता हैं। इस तरह वे ज्ञात में अज्ञात

हिम्मत शाह का मूर्तिशिल्प क्राइस्ट

हिम्मत शाह की शिल्पकृति 'विज़डम फ्रूट'

हिम्मत शाह की शिल्पकृति 'हेमर ऑन द स्क्वायर'

को रच देते हैं। किंतु यह अनुभूति प्रेक्षक को तभी हो पाती है, जब कोई बिना किसी आग्रह भाव के रिक्त मनश्चेतना से कृति के समक्ष खड़ा होकर उसे अपलक देखता है। दृष्टि संपन्नता जिसकी अनिवार्य शर्त है। परंतु अनेकानेक कारणों से जन-सामान्य द्वारा ऐसा नहीं किया जाता। अत: कृतियों के मर्म पर अनेक लोगों की पहुंच नहीं होती है। फिर भी कलाकार तो कलाकार होता है। अपनी यात्रा जारी रखता है।

वर्ष 2016 में किरण नाडार म्यूजियम में 'हेमर ओन द स्क्वायर' नाम से हिम्मत शाह का एक बड़ा शो आयोजित हुआ था। रुबीना करोडे ने इसे क्यूरेट किया था। इस प्रदर्शनी को भारतीय आधुनिकता वाद पर संवाद खोलने का अवसर माना गया था। 'अंडर द मास्क' प्रदर्शनी भी आधुनिक कला के वैश्विक परिदृश्य में अस्तित्व की अवस्थिति पर कला के बयान को नयी बहस के रूप में सामने लाने वाली है। 'हैमर ओन द स्क्वायर' हिम्मत शाह की चर्चित कृति है। इसी नाम की अन्य माध्यम में एकाधिक प्रतिकृतियां हिम्मत शाह द्वारा रची गई है। किंतु इस बार के शिल्प में डायमंड का प्रयोग किया गया है। एक घन (स्क्वायर) है जिसके भीतर कोई द्रव्यमान नहीं है। उसके एक ऊपरी कोने पर हथौड़ा रखा हुआ है। हथौड़े का वह भाग जो चोट मारता है, डायमंड से बनाया गया है। उसके मध्य भाग में से निकलता हुआ धातु का हत्था है जो स्क्वायर परिधि से बाहर निकला हुआ है। अपने निज अस्तित्व में घन, ठोस धातु का बना है, पूरा निंगोठ। इसी सखूत सतह पर, हीरे का हथौड़ा ताल दे रहा है। यदि इस शिल्प की व्यंजकता को समझा जाए, तो गहरे अर्थ निकलते हैं। वस्तुत: कलाकार पहले चरण में ही अस्तित्व को चुनौती देते हुए गोल आकृति के विलोम में घन-आकृति को सामने लाता है। घन के द्रव्यमान की रिक्ति अस्तित्व की उपस्तिथि को दूसरी चुनौती है। इस पर हथौड़े का संयोजन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर कठोर प्रहार की तरह है। यहां संस्कृतियों का अलगाव और उनका सामीप्य एक ही परास में नाप लिया गया है। कलात्मक संवेदन विजेता के रूप में सामने आता है।

असल में 'हैमर ऑन द स्क्वायर' शिल्पकृति पूर्व नियोजित उन रूपकों को तोड़ती है जो कला अथवा जीवन में बाद्यकारी नियमों की तरह सामने आते हैं। यह सौंदर्य के उन पैमानों को भी धता बताती है, जो बाह्य-बाह्य आवरण को व्याख्यायित करते हैं। 'हैमर ओन द स्क्वायर' शिल्प के भीतर पैठा जा सकता है। वह दर्शक को अपने भीतर घुसने का अवकाश देती है। माध्यम का आनंद लेने के उपरांत, जब इस शिल्प को 'अस्तित्व' की छवि के रूप में देखा जाता है तो वहां विशुद्ध आकार के विराट स्पेस का अनुभव होता है। हिम्मत शाह की पूर्व में बनाई कृतियां जैसे मिट्टी-धातु के हेड्स आदि दर्शक को अपने भूतर घुसने का वैसा अवसर नहीं देती, जैसा अवसर हैमर ओन द स्क्वायर कृति देती है। हिम्मत शाह की कला एकांतिक है, तमाम तरह के हर्ष-विषाद उत्सव-उदासी के बावजूद वे एकांतिक हैं। बड़ी बात यह है कि वे 'अनेकांत' के विराट विचार के पक्ष में एकांतिक है। यह कृति इसी औदात्य की सृष्टि करते हुए, दृष्टा-भावों के लिए सार्वभौम दिशाएं बिछा देती है। बल्कि उस पर विचरण का आमंत्रण भी देती हैं। इसका ज्यामितीय गुरुत्वाकर्षण संभावनाओं के नूतन द्वार खोलता है।

स्तंभकार लेखक वरिष्ठ साहित्यकार और कवि हैं।
संपर्क -49-सी, जनता मार्ग, सूरजपोल अंदर, उदयपुर-313001 (राज.),
मो.: 9602015389

■

जनजातीय भाषाएँ और पारंपरिक ज्ञान-संपदा

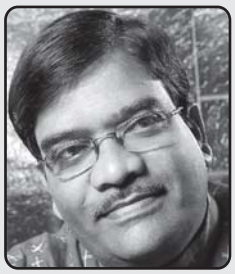

लक्ष्मीनारायण पयोधि

मैंने जीवन के शुरुआती बत्तीस वर्ष बस्तर के सघन गोण्ड जनजातीय क्षेत्र में गुज़ारे। मैं बचपन से ही अपने क्षेत्र (दक्षिण-पश्चिम बस्तर) के गोण्ड जनजाति समूह के कोया, गोट्टे, दोरला और राजगोण्ड लोगों की जीवन-पद्धति का जिज्ञासु दर्शक रहा हूँ। उनके संस्कार,रीति-रिवाज, देवलोक,पूजा-अनुष्ठान, पर्व-त्योहार, नृत्य-संगीत,गीत-कथाएँ आदि मुझे आकर्षित करते रहे हैं। मैंने हमेशा उनकी गतिविधियों का हिस्सा बनकर उन्हें समझने की कोशिश की है। मैं किसी भी बुज़ुर्ग पुरुष या महिला के पास बैठकर उनसे इतिहास का कोई किस्सा,पारंपरिक कहानी,या गीत सुना करता था। प्राइमरी स्कूल में लकड़ी के बड़े संदूकों में रखी पुस्तकों का मैं प्रभारी छात्र हुआ करता था। उन संदूकों में बहुत सारी पुस्तकों के साथ गोण्डी बालभारती और माड़िया बालभारती भी थीं। मैं उन्हें पढ़ने-समझने के लिये घर लाया करता था। गोण्डी और माड़िया भाषाएँ स्थानीय दोरली और गोट्टे भाषाओं से कुछ अलग होने के कारण कई शब्दों के अर्थ दोरला और गोट्टे लोग भी नहीं बता पाते थे। लेकिन उन भाषाओं के प्रति जिज्ञासा और उन्हें समझने की कोशिश कभी कम नहीं हुई। जनजातीय भाषाओं के प्रति यह जिज्ञासा और कोशिश भोपाल आने के बाद उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी,जिसकी परिणति गोण्डी-हिन्दी,भीली-हिन्दी एवं कोरकू-हिन्दी शब्दकोशों के लिये शब्द-संकलन और संपादन के रूप में हुई। आदिवासी संस्कृति के प्रति बचपन में जागी जिज्ञासा ने अवसर मिलते ही मध्यप्रदेश की विभिन्न जनजातियों की संस्कृति और भाषाओं से संबंधित शोध-अध्ययन और लेखन की ओर प्रवृत्त किया। मैं अपने इसी अनुभव और अध्ययन के आधार पर यहाँ प्रमुख रूप से गोण्डी जनजाति समूह उनकी भाषा गोण्डी तथा प्रसंगानुसार अन्य जनजातियों की संस्कृति और भाषाओं से संबंधित तथ्यों की बात करूँगा।

गोंड प्राचीनतम जनजातियों में से एक है। बस्तर में प्रचलित पृथ्वी की उत्पत्ति-कथा के अनुसार 'पहले हर ओर जल ही जल था। उसी जल में तैर रहा था एक तूम्बा।तूम्बे में बैठा था डड्डेबुरका कवासी बायले(स्त्री) के साथ। भीमुलदेव चला रहे थे नाँगर(हल)। जिधर चलता नाँगर,उधर उठ रही थी धरती। पालनार (बस्तर का एक गाँव) में हो रहा था पृथ्वी का जन्म। चलते-चलते नाँगर की नोक टकरायी तूम्बे से। तूम्बे से निकला डड्डेबुरका कवासी बायले के साथ। और हो गयी पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत और बढ़ता गया कोयतूर का वंशवृक्ष। डड्डेबुरका कवासी कोयतूर,यानी गोण्ड जनजाति का आदिपुरखा।'

इस पारंपरिक कथा के अनुसार जल से पृथ्वी की उत्पत्ति बस्तर के पालनार में हुआ था और उस पर जीवन की शुरुआत करने वाले थे पहले गोण्ड डड्डेबुरका कवासी और उसकी स्त्री।

गोण्ड जनजाति की अन्य प्रचलित मान्यताओं के अनुसार जल से निकली पृथ्वी के कालांतर में दो टुकड़े हुए। भूवैज्ञानिकों के अनुसार उत्तरी भूखंड 'लौरेशिया(अण्डोद्वीप) और दक्षिणी भूखंड 'गोण्डवानाऊ लैंड' (गण्डोद्वीप) कहलाये। एक और भूखंड 'अंगारा लैंड' का भी उल्लेख मिलता है। शंभूसेक (महादेव शंभु) गोण्डवाना लैंड (गण्डोद्वीप) के प्रथम अधिपति थे। इस क्रम में भूवैज्ञानिक भी मानते हैं कि समय के साथ गोण्डवाना

लैंड(गण्डोद्वीप) के और विभाजन हुए, जो अफ्रीका,दक्षिण अमेरिका,कोयामूर, ऑस्ट्रेलिया और अंटार्कटिका महाद्वीप कहलाये। इन्हें पंच महाद्वीप कहा जाता है। गोण्ड विद्वान मानते हैं कि ईसा पूर्व 5000 वर्ष तक गोण्डवाना लैंड पर शंभूसेक (महादेव) की 88 पीढ़ियों (महादेवों) का आधिपत्य रहा,जो लगभग 10,000 वर्षों की कालावधि मानी गयी है। उन्होंने इस संपूर्ण अवधि को तीन कालखंडों में विभाजित किया है :

(1) शंभू–मूला काल।

(2) शंभू–गौरा काल।

(3) शंभू–पार्वती काल।

पुरातत्ववेत्ता, इतिहासकार और नृतत्व–विज्ञानियों ने विश्व की ज्ञात विकसित प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक, जिस सिन्धुघाटी की सभ्यता को द्रविड़ियन सभ्यता माना है, गोण्ड विद्वान उसे शंभू–पार्वती–काल में विकसित गोण्डी–सैन्धव सभ्यता कहते हैं।

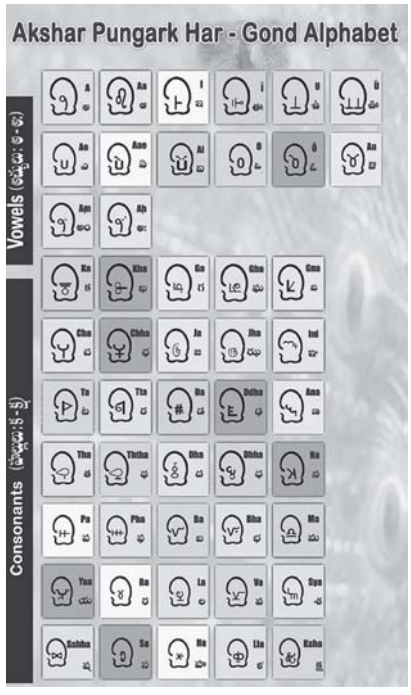

मानवशास्त्री गोण्ड जनजाति को ऑस्ट्रोलायड नस्ल तथा द्रविड़ परिवार के अंतर्गत रखते हैं।यह भारत की एक प्रमुख जनजाति है,जिसकी आबादी देश के मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, ओडिशा, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, गुजरात आदि राज्यों में है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार गोण्ड जनजाति समूह की जनसंख्या लगभग 1 करोड़ 32 लाख है।

गोण्ड जनजाति की भाषा गोण्डी है।गोण्ड विद्वान इस भाषा को उनके आराध्य शंभूसेक महादेव के डमरू की ध्वनियों से उत्पन्न मानते हैं। वे इसे गोएन्दाधिवाणी अथवा गोन्दवाणी या गोण्डवाणी कहते हैं।

गोण्डी मूलत: द्रविड़ भाषा–परिवार की भाषा है। गोण्डी को पहले मध्य द्रविड़–परिवार में रखा गया था, परंतु नवीन विश्लेषणों के आधार पर प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. भद्रिराजु कृष्णमूर्ति ने इसे दक्षिण–मध्य द्रविड़–परिवार में सम्मिलित किया है। उल्लेखनीय है कि तेलुगु के अलावा इस समूह की कोण्डा, पेंगु, कोंध, कोलामी, धुरवी आदि सभी भाषाएँ इस समूह की विभिन्न जनजातियों द्वारा ही प्रयुक्त की जाती हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार गैरसूचीबद्ध भाषाओं में भीली/भिलौड़ी (1.04 करोड़) के बाद गोण्डी बोलनेवालों की संख्या (29 लाख) के आधार पर दूसरे स्थान पर है।

विभिन्न राज्यों की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव के अनुरूप गोण्डी के स्वरूप में अंतर भी पाया जाता है। जैसे, आंन्ध्र और कर्नाटक के सीमावर्ती क्षेत्रों में तेलुगु और कन्नड़ के शब्द,तेलंगाना और महाराष्ट्र के सीमावर्ती क्षेत्रों तेलुगु और मराठी शब्द, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के सीमावर्ती क्षेत्रों में बुंदेली, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि शब्दों का मिश्रण गोण्डी में देखा जा सकता है।

मैंने आदिम जाति अनुसंधान संस्था (टी.आर.आई.), भोपाल के सेवाकाल के दौरान जब मध्यप्रदेश के विभिन्न ज़िलों में बोली जाने वाली गोण्डी–हिन्दी शब्दकोश पर काम करना शुरू किया तो इस भाषा के क्षेत्रीय अंतर के बारे में मालूम हुआ। छिन्दवाड़ा, बैतूल और सिवनी की गोण्डी, मराठी शब्दों के मिश्रण के बावजूद मूल द्रविड़ियन स्वरूप की है, जबकि मण्डला, डिण्डोरी, बालाघाट, अनूपपुर आदि छत्तीसगढ़ के सीमावर्ती ज़िलों में बोली जाने वाली गोण्डी लगभग छत्तीसगढ़ी जैसी है। मंडला ज़िले के गजेटियर में इसका उल्लेख मण्डलाही या गोण्डवाणी के रूप में किया जाता रहा है। मण्डला और डिण्डोरी के बीच स्थित चौरासी क्षेत्र (चौरासी ग्रामों का संकुल) में पारसी यानी मूल द्रविड़ियन गोण्डी विद्यमान है। गोण्डी और मण्डलाही के व्याकरणगत अंतर के कारण शब्दकोश को दो भागों में विभाजित करना पड़ा था।

परिवर्तनशीलता भाषा का स्वभाविक गुण है। दीर्घ कालक्रम और विस्तृत भौगोलिक आयामों ने गोण्डी के क्षेत्रीय अंतरों को जन्म दिया है। उसी के अनुरूप इस भाषा में ध्वनिगत और व्याकरणिक अंतर परिलक्षित होते हैं। विशेष रूप से– 'र्, ल्' और 'ङ्' ध्वनियाँ एक–दूसरे से बदलती दिखाई देती हैं। मिसाल के तौर पर – बैतूल में जहाँ 'वह' (पु.) के लिये 'ओल्' शब्द मिलता है, वहीं छिन्दवाड़ा में 'ओर'। छिन्दवाड़ा और मंडला में बैतूल के 'वरा' (आओ) का रूप 'वड़ा' हो जाता है। बैतूल में युवक के लिये 'रय्योल्' शब्द है, वहीं मंडला में वह 'रय्योर' उच्चरित होता है। मंडला के अधिकांश शब्दों का ''बैतूल में 'ड्' के रूप में मिलता है।

ध्वनियों का यह परिवर्तन शब्दों को एकदम भिन्न रूप भी प्रदान करता है। जैसे, मंडला में पानी को 'आर' अथवा 'यार' कहते हैं तो बैतूल में 'येर' या 'एर'। बैतूल के 'कचुम' (निकट) के स्थान पर छिन्दवाड़ा में 'करुम' मिलता है। इसी प्रकार मंडला में सर्वनाम 'मैं' के लिये 'ननाा' है तो बैतूल में 'अना'। ये तो कुछ है उदाहरण हैं, एक ही भाषा के स्वरूप में निहित बारीक अंतरों के। इसी तरह बहुवचन बनाने के लिये प्रयुक्त प्रत्ययों में भी भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अंतर दिखाई देता है। मेरे द्वारा गोण्ड समुदाय के सहयोग और मेरे गुरुदेव एवं गोण्डी के अध्येता-भाषाविद् डॉ. शशि पाण्डेय के मार्गदर्शन में तैयार 'गोण्डी-हिन्दी' शब्दकोश में इन सारे अंतरों के अध्ययन-विश्लेषण को समाहित करने का प्रयास किया गया है।

मध्यप्रदेश में गोण्डी प्रमुख रूप से मंडला, डिण्डोरी, सिवनी, बालाघाट, शहडोल, छिन्दवाड़ा, बैतूल, होशंगाबाद, रायसेन आदि ज़िलों में तथा आंशिक रूप से अन्य ज़िलों के गोंड जनजाति की आबादी वाले क्षेत्रों में प्रयुक्त होती है। अब इस भाषा का क्षेत्रीय विस्तार उतना नहीं रहा, जिसका उल्लेख सन् 1906 में प्रकाशित जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण (खण्ड चार) में मिलता है। मातृभाषा के प्रति उदासीनता और अन्य कारणों से गोण्डी बोलने वालों की संख्या निरंतर कम हो रही है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है,वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में गोण्ड जनजाति की जनसंख्या लगभग 1 करोड़ 32 लाख है, जबकि इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 29 लाख है। यह एक बड़ा अंतर है। जनगणना के आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि मध्यप्रदेश में भी गोण्डी भाषा के प्रयोक्ताओं की संख्या में लगातार कमी आयी है। वर्ष 1971 की गणना के अनुसार गोण्ड समुदाय के 31.68 लोग गोण्डी बोलते थे। वर्ष 1991 की गणना के आँकड़ों में यह प्रतिशत घटकर 27.46 हो गया। आगे भी इस स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है।

गोण्डी भाषा लिखने के लिये आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक आदि राज्यों में तेलुगु के लिये प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता है।

ब्राह्मी लिपि का प्रयोग दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और मध्य-पूर्व एशिया के कुछ भागों में होता है।इसे भारतीय लिपि भी कहा जाता है। इसका प्रयोग इंडो-यूरोपियाई, चीनी-तिब्बती, मंगोलियाई, द्रविड़ीय, ऑस्ट्रो-एशियाई अथवा ऑस्ट्रोनेशियाई, थाई, कोरियाई आदि भाषा-परिवारों में होता आया है। सिन्धु-सभ्यता में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग होता था। ईसा पूर्व तीसरी सदी में सम्राट अशोक के राज्यकाल में ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी। चोल कालीन तमिल लिपि 'वट्टेलुत्तु' और परवर्ती तमिल लिपि 'भट्टिप्रोलु' भी ब्राह्मी लिपि से ही मानी जाती हैं।

इसी ब्राह्मी लिपि के आधार पर सन् 1918 में मध्यप्रदेश के बालाघाट ज़िले के मुंशी मंगल सिंह मासाराम ने गोण्डी लिपि विकसित की। इसमें ब्राह्मी के अलावा अन्य लिपियों के वर्णों का भी समावेश किया गया। इसे 'मासाराम लिपि' के नाम से प्रोत्साहित किया गया। हालाँकि अभी भी यह लिपि व्यावहारिक रूप से जन साधारण के प्रयोग में नहीं आ सका है। सन् 2014 में हैदराबाद विश्वविद्यालय के कुछ शोधार्थियों ने तेलंगाना के आदिलाबाद ज़िले में स्थित 'गुंजल गाँव' से प्राप्त एक दर्जन पाण्डुलिपियों में से एक लिपि खोज निकाली, जिसे 'जन्मज गुंजल लिपि' नाम से जाना गया।

मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र सहित अन्य संबंधित हिन्दी राज्यों में देवनागरी लिपि में गोण्डी लिखी जाती है। गोण्ड जनजाति की मौखिक परंपरा में गीत,कथाओं, गाथाओं, लोकोक्तियों (मुहावरों, कहावतों, पहेलियोंआदि) का विपुल भंडार है। इसे संकलित-प्रकाशित कर संरक्षित करने का प्रयास देवनागरी और संबंधित राज्यों की मुख्य भाषा की अन्य लिपियों के माध्यम से किया जा रहा है।

यह संतोष की बात है कि मध्यप्रदेश में लुप्त होती आदिवासी भाषाओं को बचाने के की चिंता सरकार द्वारा विभिन्न स्तरों पर की जाती रही है, परंतु वह पर्याप्त सिद्ध नहीं हुई है। जनजातीय भाषाओं को बचाने के लिये शिक्षा और शासकीय सेवा सहित अन्य विभिन्न क्षेत्रों में उनके प्रयोग के पक्ष में माहौल बनाना पड़ेगा, क्योंकि इन्हें व्यवहार में अपनाये बिना लाख प्रयासों के बावजूद ये बचेंगी नहीं। इन प्राचीन भाषाओं के वैभव को लौटाने के लिये उनके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और मौखिक साहित्य के रूप में उपलब्ध पारंपरिक ज्ञान-संपदा के महत्व से परिचित कराना होगा। अभिलेखन के साथ-साथ यदि जनजातीय भाषाओं में रचनात्मक मौलिक साहित्य-लेखन को प्रोत्साहित किया जा सका तो न केवल इनका उत्थान होगा,बल्कि ये चिरजीवी भी हो सकेंगी। शिक्षा में वैकल्पिक भाषाओं के रूप में इन्हें शामिल करते हुए नौकरियों से जोड़ा जाना भी संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण क़दम होगा।

- (लेखक आदिवासी संस्कृति और भाषाओं के अध्येता, शब्दकोशकार और प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं।)

ए-1, लोटस, स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बागमुगालिया,
भोपाल-462043, मो.नं. 8319163206

■

कला क्या है?

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

कला के संबंध में अब तक सैकड़ों देशी – विदेशी विद्वानों ने अपने – अपने मत प्रकट किए हैं। साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि अपने अन्दर जो सौन्दर्य भरा पड़ा है, उसकी किसी भी माध्यम से अभिव्यक्ति कर देना ही कला है, माध्यम चाहे जो भी हो। अंग्रेज़ी के कवि William Wordsworth ने कविता को सशक्त अनुभूतियों का सहज उद्रेक मानते हुए कहा है कि –

Poetry is the sponteneous overflow of powerful feelings.

उनकी इस बात को कला के संदर्भ में काव्य के माध्यम से ही मैं भी कह देता हूं कि –

कूट-कूट कर जब रजक, हृदय भरे हों भाव।
होत सहज उद्रेक फिर, कला प्रगट ह्वै जाव।।

कविता या कला का यह उद्रेक ठीक उसी प्रकार से होता है जैसे कि एक पतीली में पानी, चीनी, पत्ती, दूध और अदरक व इलायची आदि मसाला डाल दें और उसके ढक्कन (lid) को बंद कर उसको गैस पर रखकर उबलने दें तो एक निश्चित ताप से ऊपर जाते ही कैटली का ढक्कन नीचे गिर जाएगा और चाय उफनकर नीचे गिरने लगेगी, ठीक उसी प्रकार जब हमारे अंतस में भरा सौन्दर्य गुरु रूपी अथवा उचित परिस्थिति रूपी ताप को ग्रहण करता है तो उसका भी सहज ही उद्रेक हो जाता है।

चूंकि कला के प्रकटीकरण के भी विभिन्न माध्यम हो सकते हैं। इस आधार पर कला को दो भागों में बांट दिया गया है –

1. चारु कला या ललित कला

2. कारु कला या उपयोगी कला

इन नामों से एक सन्देह मन में आ सकता है कि कारु कला यदि उपयोगी कला होती है तो ललित कला क्या अनुपयोगी कला होती हैं? नहीं, ऐसा नहीं है। यहां उपयोगी से अर्थ उनका दैनिक जीवन में भौतिक रूप से उपयोग में आने से है। अत: उपयोगी कला के अन्तर्गत गलीचा बनाने या फर्नीचर बनाने जैसी सभी कलाओं को रखा जा सकता है। उपयोगी कलाएं साधन के रूप में तो उपयोगी हो सकती हैं, साध्य नहीं हो सकतीं। यही कारण है कि हम एक कवि, संगीतज्ञ अथवा चित्रकार को जितना सम्मान देते हैं उतना किसी बढ़ई या कुंभकार को नहीं।

ललित कलाओं के अन्तर्गत जिन पांच कलाओं को रखा गया है, वे क्रमानुसार इस प्रकार हैं –

1. भवन निर्माण कला
2. मूर्ति कला
3. चित्र कला
4. संगीत कला
5. काव्य कला

इस वर्गीकरण को देखने से एक बात स्पष्ट होती है कि प्रथम तीन कलाओं का सम्बंध हमारी दृश्येंद्रियों से है जबकि अन्तिम दो का श्रवणेंद्रियों से। भवन, मूर्ति और चित्र को न तो बिना आंखों के बनाया जा सकता है और न बिना आंखों के देखा ही जा सकता है जबकि संगीत और कविता का आनन्द लेने के लिए कर्णेंद्रियों या कानों का होना अति आवश्यक है।

इस वर्गीकरण के यदि मूल में जाएं तो ज्ञात होगा कि ये कलाएं क्रमश: निम्न से उच्च स्तर की ओर वर्गीकृत की गई हैं।

इस दृष्टिकोण से प्रथम तीन कलाओं का वर्गीकरण तो ठीक है क्योंकि भवन निर्माण के लिए स्थान, सामग्री, समय और शक्ति सभी काफ़ी अधिक चाहिए जबकि मूर्ति में उससे कम और चित्र में सबसे ही कम। रही प्रभाव की बात, तो भवन के समग्र सौन्दर्य को न तो एक साथ निहारा और मन में उतारा जा सकता है और न प्रकट ही किया जा सकता है। जैसे कि यदि हम ताजमहल को देखकर उसका चित्र बनाना चाहें तो उसके बाह्य ढाँचे को ही चित्रित कर पाएंगे, न कि उसके आंतरिक सौन्दर्य को। इसलिए प्रभाव की दृष्टि से यह कला तीनों में सबसे निम्न कोटि की मानी जाएगी। मूर्ति को एक नज़र में (at a glance) निहारा भी जा सकता है और उसके सौन्दर्य

को आत्मसात् भी किया जा सकता है, चाहे वह कितनी ही विशाल क्यों न हो। हां, हमें उसे देखने के लिए कुछ दूर अवश्य खड़ा होना होगा। चित्र को तो पास से ही देखा भी का सकता है और उसके सौन्दर्य को हृदयंगम भी किया जा सकता है। अत: इन तीनों कलाओं में भवन निर्माण कला से उच्च मूर्ति कला और मूर्ति कला से उच्च चित्र कला स्वत: ही सिद्ध हो जाती है।

अब आते हैं, संगीत और काव्य कला पर। संगीत का नाम पहले और काव्य का अन्त में रखने से सिद्ध होता है कि उक्त वर्गीकरण के हिसाब से संगीत कला काव्य कला से निम्न कोटि की मानी गई है।

इसके पीछे जिस प्रकार के तर्क विद्वान् देते हैं, बड़े ही हास्यास्पद हैं। मैं स्वयं जब हिंदी – साहित्य में एम. ए. का छात्र था तो मैंने भी अपने गुरुजनों के सामने यह जिज्ञासा रखी। तब मुझे समझाया गया कि संभवतया संगीत में वाद्य – यंत्र आदि बहुत ताम – झाम की और अधिक कलाकारों की आवश्यकता होती है, अत: उसे काव्य से निम्न स्तर पर रखा गया होगा। आम आदमी के गले तो यह बात आसानी से उतर भी जाएगी किंतु मुझ जैसे ज़िद्दी के गले तो कभी नहीं उतरेगी। मेरा तर्क है कि काव्य के लिए शब्द आवश्यक हैं और संगीत के लिए स्वर। शब्द स्थूल होता है अपेक्षाकृत स्वर के। रही प्रभाव की बात, तो आसानी से इस प्रयोग को भी करके देखा जा सकता है। शब्द के अर्थ को ग्रहण करने के लिए उस भाषा का ज्ञान आवश्यक है जबकि संगीत की भाषा को समझने के लिए न तो स्वर – ज्ञान की आवश्यकता है और न उसके राग – रागिनियों और तालादि के ज्ञान की। संगीत तो एक सार्वभौम भाषा (Universal Language) है। इसे सुनकर तो ज्ञानी – अज्ञानी मानव ही नहीं, मानसिक रूप से विक्षिप्त और रोगग्रस्त भी आनंदित हो उठता है। मानव ही क्या, संगीत सुनकर तो पशु – पक्षी और पेड़ – पौधे तक झूम उठते हैं; दुधारू पशु अधिक मात्रा में दुग्ध देने लगते हैं। अत: काव्य कला इससे उच्च हो ही नहीं सकती। यदि हम अपने ही देश की विविध भाषाओं और बोलियों के कवियों की कविताएं सुनें तो क्या हम उनको समझ पाएंगे ? यदि विश्व के तमाम देशों के कवियों को एकत्रित कर एक सम्मेलन किया जाए और सब एक दूसरे का काव्य पाठ सुनें तो क्या उनकी समझ में कुछ भी आ पाएगा ? नहीं न, क्योंकि उनको एक दूसरे की भाषा का ज्ञान ही नहीं है। याद रखें कि संसारभर के संगीत में सात ही स्वर होते हैं। शब्दों की सत्ता तो बहुत बड़ी है। हर भाषा की अपनी अलग ही वर्णमाला है और अलग ही शब्द – भण्डार।

अत: मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि काव्य कला को संगीत से उच्च कोटि प्रदान करते समय या तो ध्यान ही नहीं दिया गया अथवा जान – बूझकर ऐसा किया गया। संगीतज्ञों की समझ में भी यह बात न आने के पीछे का कारण उनकी अशिक्षा ही रही होगी।

संगीत के हर स्तर के छात्र – छात्राओं से एक प्रश्न बहुधा पूछ लिया जाता है कि –

'कला किसे कहते हैं ? ललित कलाओं में संगीत का क्या स्थान है ?' अत: संगीत के विद्यार्थियों द्वारा इस प्रश्न का समुचित उत्तर दिया जा सके, इसलिए इस बात को समझना अति आवश्यक है। अपने इस चिंतन को सुधी पाठकों, जिज्ञासुओं और छात्र – छात्राओं तक इसी उद्देश्य से रखा गया है।

– लेखक/संपादक/संगीतज्ञ/कवि हैं।
डॉ. राजेन्द्र कृष्ण संगीत महाविद्यालय एवं शोध-संस्थान
'संगीत-सदन', 94, महाविद्या कॉलोनी, द्वितीय चरण,
मथुरा-281 003 (उ.प्र.) मो. 98972 47880

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

समीक्षात्मक आलेख

'राम-सीता माता वारता' का मौखिक पाठ : समाज जीवन के संदर्भ में

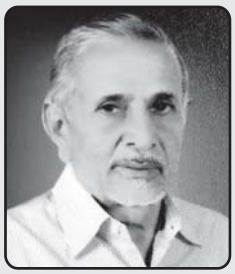

डॉ. भगवानदास पटेल

भूमिका

रामकथा, कृष्णकथा और पांडवकथा ये तीन भारतीय कथा साहित्य की ही नहीं, किन्तु समग्र राष्ट्र की विविध जाति-प्रजातियों की संस्कृति को जिंदा रखती रक्तवाहिनियाँ हैं। बन, ग्राम और नगर – इन तीन स्थल विशेष की जाति-प्रजातियों में इन तीन कथाओं की पूर्वकाल से सांप्रतकाल तक सुरक्षित सुदीर्घ और सुदृढ़ जीवनदायिनी परंपराएँ हैं। रामायण, भागवत और महाभारत – ये तीन संस्कृत भाषा में रक्षित प्रमुखत: नागरिक या शिष्ट लिखित परंपराएँ होने के साथ साथ अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की रचना रीतियों को आधार देनेवाले प्रकाशस्तंभ हैं। इसके अलावा भारत के विविध प्रदेशों के ग्राम और बन के आदिवासी मौखिक साहित्य में ये तीन कथाधाराएँ जल-मीन की तरह व्याप्त हैं। किन्तु, संशोधन-संपादन के क्षेत्र में आदिवासी क्षेत्र मुख्यत: अछूता ही रहा है। फिर भी पिछले दो दशकों में इस शोधार्थी के द्वारा संशोधित-संपादित भील आदिवासियों के ''रोम-सीतमानी वारता''[1] (भीलों का रामायण), ''भीलों का भारथ''[2] (भीलों का महाभारत), 'राठोरवारता'[3], 'गुजरांनो अरेलो'[4], जैसे लोकमहाकाव्यों और अन्य विधाओं के 35 ग्रंथों के प्रगटीकरण से आदिवासियों का बहुआयामी मौखिक साहित्य काफ़ी हद तक उजागर हुआ है।

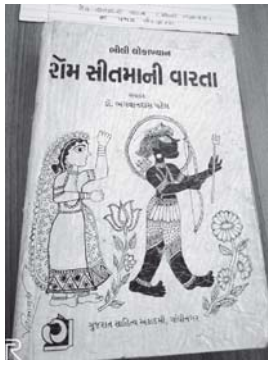

विषय

गुजरात प्रांत के खेड़ब्रह्मा तहसील में निवास करते डुंगरी भील आदिवासियों के वर्ष के ऋतुचक्र के मुताबिक आते धार्मिक और सामाजिक पर्व-प्रसंगों के समय प्रगट होती उनकी वर्तमान जीवन-रीति में से आविर्भूत लोकमहाकाव्यों में से यहाँ 'रोम-सीतमानी वारता' (भीली रामायण) के पाठ (Text) को उनके समाज जीवन के संदर्भ में अध्ययन करने का मुख्य उद्देश्य है।

विषय की प्रस्तुति

राम-सीतामाता वारता जैसे महाकाव्य सिर्फ कथारस को संतृप्त करने के लिए ही नहीं आते। ऐसे महाकाव्य भील जीवन की कोई-न कोई धार्मिक या सामाजिक प्रणाली को क्रियाशील करके संपन्न बनाने के लिए आते हैं। अत: वे भील समाज के धार्मिक अनुष्ठान, त्यौहार और सामाजिक प्रसंग के खास प्रकार के वातावरण के प्रभाव तले, गायक या कथा- वाचक के कंठ से तथा दर्शक या श्रोताओं के सहयोग से शब्दों द्वार अपना कलामय स्वरूप धारण करते हैं । इसलिए ऐसे लोकमहाकाव्य, भीलों के धार्मिक और सामाजिक वातावरण में जिस स्थल और काल में वाचित रूप धरते हैं, उसी स्थल और काल के परिप्रेक्ष्य में ही उसी समाज के लोगों के साथ हिल-मिलकर और इन विधि-विधानों में सहभागी होकर उसका तलगामी पाठ प्राप्त कर सकते हैं । प्राप्त मौखिक शास्त्रीय पाठ के माध्यम से 'राम-सीतमानी वारता' जैसे महाकाव्य का भील समाज जीवन के संदर्भ में अध्ययत कर सकते हैं और इसके बाद रामायण के लिखित घाट के साथ तुलना कर सकते हैं।

पाठ की प्राप्ति

अत: गुजरात के पंथाल गाँव के महामार्गी साधु नवजीभाई खांट के सान्निध्य में रह कर, 1984 से 1987 के समय खंड में ऋतुचक्र के मुताबिक आते 'धूळानो पाट' (महामार्गी पाट), 'कोबरिया ठाकुल्नी कोळी', 'समाधि पूजवी', 'हूरो मांडवो' जैसे चोखे-मैले धामिक अनुष्ठानों में सहभागी होकर, साधु के मानस में रहे मनोगतपाठ 'रोम-सीतमानी वारता' को समझने किया गया था। इसकी समीक्षा यहाँ अंकित है।

नियत पाठ

राम-सीतमानी वारता 30 पँखुड़ियों (अध्याय, पर्व) में विभाजित है और ऋतुचक्र के मास के आह्वान में भील साधु और भोपों (ओझा) द्वारा तंबूर, मंजीरे, सांग (चर्म वाद्य) और बंसी जैसे लोकवाद्यों पर नृत्य के साथ गाया जाता है। इसके पाठ को साधु या

भोपा परंपरा और गुरु के पास से प्राप्त करता है। कथा धार्मिक अनुष्ठान के विधि-विधानों और मंत्रों संलग्न होती हैं इसमें आते प्रसंग -घटना -चरित्रों को पूरा समाज सही-सच्चे मानता है। उन पर अटल धार्मिक आस्था जुड़ी होने से ऐसे प्रसंग -घटना -चरित्र देवत्व प्राप्त करके पुराकथा का रूप लेकर लोक के सामूहिक मानस, हृदय और लहू में भरते हैं। अत: उसका वाहक-गायक, परंपरा के बाहर की घटना जोड़ नहीं सकता या नये चरित्र का सृजन पर नही कर सकता। यदि करता है तो समाज ऐसे प्रसंग -घटना घटना को स्वीकारता नहीं। परिणामत: कथा वाचक के मानस में परंपरागत पाठ नियत हो जाता है। पहले से ही पाठ का आंतरबाह्य स्वरूप नियत होने से समाज के पर्व-प्रसंग के अवसर पर, लंबे अंतराल के बाद भी कथा वाचक के मनोगत पाठ (Mental text) की प्रस्तुति सुनिश्चित रहती है ।

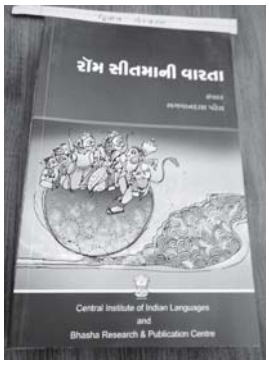

राम-सीतमा का वर्तमान सामाजिक संदर्भ

राम-सीतमा भील समाज जीवन में जल-मीन की तरह ओतप्रोत है। 'दसवाँ ग्रह', 'हनुमान लंका में', 'राम- लक्ष्मण लंका में' 'रावण', 'रावणवध', इत्यादि पँखुड़ियाँ बैर की समाप्ति के बाद 'हूरो' (शूरे) की स्थापना के समय और माघ(माह) मास में कोबरिया ठाकुर की कोठी के अवसर पर गायी जाती हैं।

'सीता वनखंड में', 'हजाम और दशरथराजा', 'श्रवणकुमार', 'जनकराजा' आदि पँखुड़ियाँ भील समाज की मरणोत्तर क्रियाएँ-शंखोद्वार, बड़ी न्यात, समाधि की स्थापना आदि प्रसंगों पर गायी जाती हैं ।

'इन्द्र और गौतम ऋषि', 'भगवान और शिव', 'सीता' जैसी पंखुड़ियाँ भादों मास में महामार्गी पाट की स्थापना के अवसर पर गायी जाती हैं।

'राम-सीता का विवाह', 'राम-सीता और लक्ष्मण वनखंड में' जैसी पंखुड़ियाँ लग्नोत्सव पर गायी जाती हैं।

वर्ष पूरा होने पर राम- सीतमा का कथारूपी कमल पूर्ण पँखुड़ियों में विकसित होता है और उसकी सुगंध जगत में फैलती है। साधु की श्रद्धा है कि फूल सुख जाता है किन्तु उसकी सुगंध अमर हो जाती है । इस तरह युग चला जाता है किन्तु वारता आगे बढ़ती है- **जुग जाय न वारता अगळ हाले** ।

ऐसे मौखिक स्वरूप में दो-चार पीढ़ी की कथा-घटना की अनेक पँखुड़ियाँ होती हैं जो कथावाचक के गेय कथन द्वारा भिन्न भिन्न चरित्रों का विकास करती हुई और अनुष्ठानों के सान्निध्य में धार्मिक आस्था से प्रभावित श्रोता-दर्शकों को नृत्य-नाट्य-संगीत के माध्यम से रसानंद देती हुई विकसित होती हैं तथा प्राचीन और साम्प्रत समाज के रीति-रिवाज, विधिविधानों और, धार्मिक-सामाजिक परंपराओं को क्रियाशील करती हैं। अत: साधु द्वारा गायी जाती 'दसवाँ ग्रह' या 'रावण वध' जैसी पंखुड़ियाँ बैरी के हृदय में स्थित बैर भावना को प्रज्ज्वलित करती हैं और शत्रु बैर लेने के लिए उत्तारू हो जाता है। 'भगवान और शिव' और 'सीता' जैसी पँखुड़ियाँ से हृदय भक्तिरस से आप्लावित हो जाता है और सावन- भादो के पवित्र मास में लोग माँस-मदिरा से मुक्त होते हैं। तो 'सीता वनखंड में' और 'श्रवण कुमार' जैसी पँखुड़ियाँ समाधि की स्थापना के अवसर पर लोकसमुदाय के हृदय में वैराग्य के भाव जगाती हैं।

इस तरह 'राम-सीतमानी वारता' जैसे महाकाव्य सिर्फ वारताश्रवण, नृत्य या संगीत का आनंद प्राप्त करने के साधन ही नहीं हैं किन्तु प्राक् वैदिकयुग से लेकर आज तक स्थित भारतवर्ष की एक प्राचीन भील प्रजाति की धार्मिक-सामाजिक जीवनरीति है, जो. परिवार और समाज के बीच एकता स्थापित करती है । ऐसे महाकाव्य भील जाति के 'जीवनामृत' या 'जीवनरसायण' हैं।

प्रदेश और जाति

'राम-सीतमा' खेड़ब्रह्मा तहसील में से संशोधित-संपादिता किया गया है। खेड़ब्रह्मा तहसील, गुजरात के साबरकांठा जिले की ईशान दिशा में स्थित है। प्राचीन काल में 'आनर्त' के नाम से प्रसिद्ध इस प्रदेश में फैले दुनिया के एक प्राचीन पहाड़ अरावली की शिखरावलियों की तराई में भारत की एक पूर्वकालीन जाति-डुंगरी भील आदिवासी अक्रेन्द्रित रूप में बसते हैं। अनेक वर्षों से बसी इस जाति की वैदिक युग से भी प्राचीन, दीर्घ और अत्यन्त समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा है।

पूर्वकालीन भील प्रजाति

वेदों में इस प्रजाति का उल्लेख 'निषाद' नाम से हुआ है। पुरावस्तुविदों का मानना है कि निषाद 10 हजार वर्ष पहले भारत में बसते थे। इन आदि-निषाद या आदि भील लोगों ने नवपाषाणयुग की सभ्यता का विकास करके प्रागैतिहासिक युग से भारतीय संस्कृति के निर्माण में प्रमुख योगदान होने का संकेत देते हैं।[5]

मोहें-जो-दड़ो (2750-3250 ई.पू.) से 21 मानव कंकाल प्राप्त हुए हैं। इनमें निषाद प्रजाति के भी हैं; जो सिंधु सभ्यता के साथ

निषादों का संबंध और उसके निर्माण में उनका सहयोग और योगदान होने का संकेत देते हैं।

साम्प्रत भील समाज

यह सहयोग और सहभागिता के दर्शन साम्प्रत भील समाज में भी होते हैं। यह सरल समाज और कुल या गोत्र के सगे-संबंधियों से बना हैं। अत: जंगल, जमीन और जल के स्त्रोतों का अधिकार वैयक्तिक न होकर स्त्री-पुरूष से बने पूरे समाज का होता हैं।

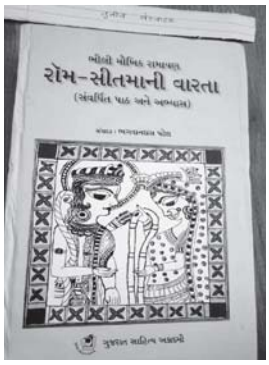

पूर्वजों ने धरोहर में दी धरती से प्राप्त चीज-वस्तुओं से पूर्वज और गोत्रदेवी-देवता की पूजा करके भेंट चढ़ाने के बाद ही फसल का समूह में उपयोग-उपभोग हो सकता है। स्थान, गाँव या देश का मालिक समग्र वंश, जाति या समाज होता है। अत: इस में से आर्थिक या सामाजिक स्तरभेद और लिंगभेद बिना का एक समतावादी 'लोक' या समाज आविर्भूत होता है ।

आदिवासी समाज सहकार और सहभागिता की नींव से आविर्भूत होने से समाज की प्रत्येक जीवनरीति और क्रियाकलापों में सहभागिता और सहयोग के दर्शन होते हैं । इस समाज में जन्म से लेकर मृत्यु तक की प्रत्येक सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियाँ सहयोग से की जाती हैं। साझे देवी-देवता के सनन्मुख गीत, कथागीत और महाकाव्य समूह में गाते हैं; नृत्य समूह में करते हैं; तथा सहभागिता में धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक विधि-विधान करते हैं। सामाजिक- धार्मिक प्रवृत्तियों में आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष का सहयोग और साझेदारी घनिष्ठ होती है। अत: साझे देवी-देवता के सन्मुख प्रकृति, पशु और मानव-सब की मंगल कामना की जाती है। योगक्षेम की प्रवृत्तियाँ जैसी कि कृषि, पशुपालन और शिकार एक दूसरे के सहयोग और सामूहिक ढंग से करते हैं। आदिवासी लोकजीवन में सामाजिक-आर्थिक ऊँच-नीच के स्तर और लिंग भेद नहीं होते। यह समानता और समतावादी समाज है।

भील महाकाव्यों के सृजन-स्त्रोत

एक निश्चित भूभाग में बसते, एक ही भाषा-बोली बोलते, सुरक्षा के लिए संगठित रहते, स्वतंत्र अर्थव्यवस्था और समान भावनावाले, स्वायत्त समाज और विशिष्ट संस्कृति वाले इस सरल समुदाय में भी वंश का प्रभुत्व धीरे धीरे बढ़ता जाता होने से आज तो आदिवासी समाज में पितृवंशी, पितृसत्ताक और पितृस्थानी परिवार व्यवस्था अस्तित्व में आयी है। फिर भी भील समाज में स्त्री-पुरुष की सहभागिता अखंड बनी रही है। अत: पुरुष के अहं से स्त्री के व्यक्तित्व का हनन नहीं हुआ है। इतना ही नहीं, समाज में आज भी बहुत से ऐसे रीति-रिवाज प्रचलित हैं जिन में स्त्री की सर्वोपरिता के दर्शन होते हैं और पूर्वकाल में यह समाज मातृसत्ताक था इसकी गवाही देते हैं। उनकी मातृसत्ताक जीवनरीति और उसमें से आविर्भूत महामार्गी जीवनदर्शन ही साम्प्रत में गाये जाते नायिका प्रधान भारथ, राम-सीतमा, गुजरांनो अरेलो जैसे सौखिक महाकाव्य और तळीरोंणी, रूपांरोणी, नवलाख देवीओ, देवरानी वारता जैसे लोकोख्यानों के विधायक परिबल या सृजन-स्रोत हैं; इसकी चर्चा आगे की है।

मानव समाज का विकास मातृसत्ताक परिवार से होने के प्रमाण लिखित भारतीय साहित्य, पुरावस्तु की भौतिक सामग्री, आदिवासियों की वर्तमान जीवनरीति और उनके मौखिक साहित्य में से प्राप्त होते हैं।

ऋग्वेदकालीन आर्य मातृसत्ताक समाज व्यवस्था से मुक्त हुए थे, किन्तु उस जीवनरीति को स्मृति उनके लिखित साहित्य में से प्राप्त होती है। देवमंडल में 'माता अदिति' का प्रमुख स्थान था और अदिति की संतान होने से देव 'आदित्य' कहलाते हैं। दिति से दैत्य, इला से ऐल वंशों के प्रचलन से विदित होता है कि प्राक्-वैदिकयुग में ऐसी प्रथा थी कि जिसमें वंश का नाम माता के नाम से चलता था। ऋग्वेदकालीन समाज में यह मातृवंशीय प्रथा, भील या निषाद जैसी आर्येत्तर जातियों से प्रविष्ट हुई थी जो प्राक्-वैदिक युग में स्थित मातृसत्ताक समाज व्यवस्था की जीवनरीति का साक्ष्य देती है।

सिंधु, हडप्पा और लोथल (जिन के साथ निषादों का भी संबंध था) में से प्राप्त मातृदेवियों की मूर्ति-बहुलता भी पाँच हजार वर्ष (2750-3250 ई.पू) पूर्व के मातृसत्ताक समाज के प्रमाण देती है ।[6]

आदि युग में मानव समाज का विकास मातृसत्ताक परिवार में से होने के आधार लिखित साहित्य वेदों और सिंधु सभ्यता के पुरावशेषों के उपरान्त आदिवासियों की जीवनरीति और इसमें से आविर्भूत मौखिक साहित्य से भी प्राप्त होते हैं।

भील आदिवासियों में विवाह के बाद भी स्त्री अपने मायके के गोत्र से पहचानी जाती है, उसके पति के गोत्र के नाम से नहीं। उतना ही नहीं मायके के गोत्रदेव की ध्वजा भी पति के घर पर फहराती है।

पूर्वकालीन मातृसत्ताक समाज में स्त्री ही सर्वोपरि होती है। उसके सामने पुरुष असहाय होता है। भोग-विलास में भी स्त्री

स्वच्छंद होती है।

भील समाज में स्त्री के विधवा हो जाने के बाद अपने मूल पति के घर ही दूसरा पति ला सकती है और पूर्व पति की संपत्ति की स्वयं स्वामिनी बन सकती है। भील समाज में यह जीवनरीति 'घजमाई' के नाम से पहचानी जाती है जो पूर्वकालीन मातृसत्ताक समाज की गवाही देती हैं। नये पति को शारीरिक संबंध स्थापित करने के अलावा पति का कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं होता।

भीलों में तरुणावस्था में गोठिया-गोठण (प्रेमी-प्रेमिका) करने की समाज स्वीकृत जीवनरीति है। स्त्री यहाँ भोग- विलास के लिए पूर्ण मुक्त होती है।

माता की मृत्यु के बाद उसके अस्थि (फूल) एक छोटे कुंभ में रखकर हितदेवी की घर में स्थापना करते हैं। जो परिवार की हितरक्षक मातृदेवी होती है ।

भीलों में प्रचलित महामार्गी पाट (धूळानों पाट) के धार्मिक अनुष्ठान के समय स्त्री गुरु के स्थान पर होती है और उसका आदेश धार्मिक सभा (गतगंगा) को स्वीकार्य होता है।

भील समाज में साम्प्रत में प्रचलित ऐसी सामाजिक-धार्मिक बातें उनकी पूर्वकालीन मातृसत्ताक समाजव्यवस्था और जीवनरीति को प्रगट करती हैं। और ऐसी मातृसत्ताक जीवनरीतियों का प्रभाव उनके महामार्गी धार्मिक जीवनदर्शन, धार्मिक अनुष्ठान और विधि-विधान तथा 'भारथ', 'राम-सीतमा', 'तोळीरोंणी' जैसे महाकाव्यों की रचना-रीतियों के निर्माण में भी पड़ा है। वस्तु: तो ये मातृसत्ताक जीवन रीतियों ही ऐसे महाकाव्यों के विधायक परिबल या सृजनस्रोत हैं। जिसकी उदाहरण सहित समालोचना आगे की गई है।

प्राक्-वैदिक-वैदिकदर्शन और महामार्ग

पूर्वकालीन मातृसत्ताक जीवनरीति से आविर्भूत भीलों के महामार्गी (निजारमार्गी) जीवनदर्शन का प्रभाव शैवधर्म, शाक्तधर्म और नाथसंप्रदाय पर भी पड़ा है।

ऋग्वेद में वर्णित गौण देवता रुद्र, बाद में शिव के रूप में विकसित हुए हैं जो आर्येतर जाति से ऋग्वेद में प्रविष्ट हुए हैं और वे निषाद या भील जाति के देवता होने की संभावना है। जिस के मूल आज भी भीलों के धूळाना पाट (महामार्गी पाट) के धार्मिक अनुष्ठान और सृष्टि की उत्पत्ति कथा और उसके संलग्न मंत्रों और गोर (गौरी) के अनुष्ठान में पाये जाते हें।

वैदिक देवता 'वाक्' जो विश्व की प्रेरक शक्ति मानी गई है वह यजुर्वेद में 'रुद्र की स्त्री देवता के रूप में परिवर्तित आज की शक्ति के स्वरूप में प्रतिष्ठित है।

भीलों में प्रचलित महामार्ग की जड़े बहुत गहरी हैं। निरंजन ज्योति स्वरूप आद्य शिवशक्ति और आज के रामदेवपीर की अवतार पूजा तक महामार्ग को घटा फैली है। इसमें नाथपंथी का योग भी सम्मिलित है। यह एक विशाल लोकधर्म है। आदि देव और आद्यशक्ति ने आविर्भूत किया 'धरम' ही 'आद्य धरम'। महादेव शिव उसके स्थापक होने से उसका नाम महापंथ पड़ा है । शिव-शक्ति की तरह नाथसंप्रदाय के आदि प्रवर्तक भी शिव माने जाते हैं। अत: नाथयोगियों के योग और तंत्र का प्रभाव भी सहजरूप में एक रूप हुआ है।[7]

शिव-शक्ति समन्वय का यह समतावादी प्रभाव भील समाजजीवन में भी देखा जा सकता है। शिव-शक्ति संप्रदाय की जड़े भी बहुत प्राचीन हैं। ऋग्वेद में देवी तत्त्व का श्रेष्ठतम वर्णन दशम मंडल 'देवीसूक्त' में मिलता है। देवीसूक्त में ब्रह्मस्वरूप सर्वव्यापिनी शक्ति को समस्त विश्व और क्रियाओं का मूल माना गया है। यह धारणा ही भारतीय शक्तिवाद का मूलाधार है, जो पूर्वकालीन आर्येतर जातियों में से प्रविष्ट हुआ है। आर्यों के आगमन (बाहर से आये हैं तो) से पहले भी भारत में बसती जातियों में सप्तमातृका की पूजा से भिन्न मातृदेवी और मातृपूजा के पाट जैसे विविध प्रकार अस्तित्व में थे। इसमें महामार्गी पाटपूजा एक ऐसा विशिष्ट प्रकार है, जिसमें सृष्टि का आदिरूप आद्यशक्ति मानी जाती है। जळुकार भगवान की तरह वह भी कमल पर प्रगट हुई। उसने ही जळुकार भगवान को साथ में लेकर सृष्टि का सृजन किया। पाटपूजा का यह केन्द्रस्थ विभाव है और भील आदिवासियों की प्रमुख श्रद्धा इसमें है। अत: उन्होंने अच्छी और बूरी सभी शक्तियों का, ऊर्जा का मूल आद्यशक्ति को माना है। इसका व्यापक असर भीलों की पुराकथाओं, मौखिक महाकाव्यों, नारी-पात्रों (नारी-चरित्रों) और विभावनाओं में देख सकते हैं। भाद्रपद में महामार्गी पाट के सन्मुख गायी जाती 'राम सीतमा', 'भारथ', 'देवरानी वारता' आदि मौखिक महाकाव्यों और पुराकथाओं में आते उमिया, अंबाव, सीता, द्रौपदी, कुंती, सुभद्रा आदि चरित्रों का निर्माण उन विभावना और जीवनदर्शन से ही हुआ है।

महामार्गी जीवनदर्शन: स्त्री का देवीकरण

पीछे सूचित किया गया है कि पूर्वकालीन मातृसत्ताक समाज में स्त्री ही सर्वोपरि होती है। उसके सामने पुरुष असहाय होता है। 'देवीसहस्त्रनाम' में 'डामरी' और 'डाकिनी' भी हैं। भील लोकमानस में आज भी स्त्री विषयक भय की भावना विद्यमान है। ऐसे भय से ही डायन विषयक खयाल पैदा हुए हैं ।'रोम-सीतमानी वार्ता में स्त्री को 'डायनदेवी' मानने के लोकमानस के खयालों से

सीता के चरित्र का देवीकरण हुआ है और उसका प्रभावी चरित्र अनेक घटनाओं का विधायक बना है।

खेत में भूले राम का धनुष्य जनक के बारह किसान और बारह जोड़ी बैल का सामूहिक बल भी तनिक हिला न सका। किन्तु, उसका एक सिरा (छोर) चूनरी के पल्लू में लगते ही सीता के पीछे घसीटा हुआ सहज रूप में जाने लगा और सीता को तनिक भी पता न चला तब भयभीत किसान सोचने लगे कि यह राजकुमारी नहीं है किन्तु डायनदेवी है:

बार कव्ठहणी (किसान) थाका
बार अव्ठां(हल)ना काटी(बैल) थाका...
वीसार तो करां ?
ए... अवें आ ते कोई डाकेंण हें... ! आवी झोगण हैं... ।[8]

स्त्री के प्रभाव के दर्शन 'राम-सीतमानी वारता' में सीता, कैकेयी, कौशल्या आदि स्त्री-चरित्रों में होते हैं। रोम- सीतमा के बहुत से प्रसंग-घटनाओं की कर्ता-हर्ता-धर्ता स्त्री-चरित्र ही हैं। इस में भी समग्र भीली रामकथा में ओज से भरा सीता का प्रभावी चित्र व्याप्त है।

प्राक्- वैदिक और वैदिकयुग के देवी-देवता प्रकृति की भिन्न शक्तियों के मूर्तरूप थे। प्रकृति महाशक्ति के रूप में शासन करती हुई देखी जाती है। पीछे सूचित किया गया है कि ब्रह्मस्वरूपा सर्वव्यापिनी शक्ति को समस्त विश्व और क्रियाओं का मूल माना गया है। यही दार्शनिक विचारधारा से भीली रामकथा के ओजस्वी स्त्री-चरित्रों का निर्माण हुआ है। और ये दार्शनिक विचारधाराओं को अपने में समेटते चलता महामार्ग के दर्शन का मातृसत्ताक जीवनरीति और शाक्तधर्म के शक्तिवाद के साथ घनिष्ठ संबंध है।

स्त्री गौरव

महामार्ग में नर और नारी के मंगल स्वरूप की कामना की गई है। इस पाट की धार्मिक विधि में युगल के लिए 'जति-सती' परिभाषा प्रायोजित हैं। भीलों के आर्थिक-सामाजिक, ऊँच-नीच और लिंग भेद बिना के समतावादी समाज के मूल यहाँ है।

महामार्ग में जो स्थान स्त्री का है वह जगत के कोई धर्म या संप्रदाय में नहीं है। महापंथ, आदिधरम, महाधरम, निजारपंथ, धूव्ठानो पाट, सनातनधर्म, आद्यधरम आदि के नाम से प्रचलित इस पंथ ने स्त्री को अनन्य गौरव दिया हैं।

निजारमार्ग में अहंकार का नाम ही निजार है। अहं जल जाय तभी भक्ति प्रकाशित होती है। अत: सर्व भेदबुद्धि तथा द्वंद्वभाव को दूर करना है। इस धर्म में स्वामि सेवक या स्वामि-पत्नी का नाता चलता नहीं। पुरूष को अपने अहं और मालिकी-अधिकार को छोड़ना है और स्त्री को गुरु के स्थान पर स्थापित करना है। अत: 'भारथ' में भी द्रौपदी को गुरु के स्थान पर स्थापित करके स्वामित्वभाव को छोड़कर मुँह में घास का तिनका दबाकर पाण्डव उसके चरणों में गिरते हैं और हाथ जोड़कर पिता के मोक्ष के लिए मार्गदर्शन माँगते हैं। द्रौपदी पांडु के मोक्ष के लिए आठवाँ शंखोद्धार (सेनेतरो) यज्ञ करने का आदेश देती है।

महामार्गी पाट के यह निजार दर्शन का प्रभाव 'भारथ' की वासुकी और द्रोपदी की पँखुड़ी में देख सकते हैं। इस पँखुड़ी (घटना -प्रसंग) में द्रौपदी और वासुकी के जार प्रेम की उत्कटता और अर्जुन के पुरुष सहज अहं और भाव को गलते हुए देख सकते हैं।

'राम-सीतमानी वारता' में राम जब वनफल लेने जाते हैं तब कुटिया बनाते श्रमित हुए सीता और लक्ष्मण देह पर सागौन के पत्ते ओढ़ कर सो जाते हैं। नींद आने के बाद पवन की लहर आती है। पत्ते उड़ जाते हैं और दोनों अनावृत्त हो जाते हैं।

ए... हागपोन रे ओढीन सत्तियां हुई न रे रहयां...
देवर मारो तुं रो रे सती.....
ए पुरुष देसना पवना देवर पोनरां उडारां हें. (2)
देवर मारो तुं रो रे सती...[9]
बापरो लक्ष्मण उपर रोम काळमो ओय्यो हें... (2)
देवर मारे तुं रो रे सती...
ए... अमे हूतां रे रोमझी देई केंणांन नहीं अडी... (2)
देवर मारे तुं रो रे सती...
ए 'ला एकें आथें रोमझी ताळी तुं तो परे... (2)
देवर मारो तुं रो रे सती...[10]

बनफल लेकर राम आते हैं। दोनों को नंगे देखकर संशयग्रस्त राम लक्ष्मण को मारने के लिए दौड़ते हैं। राम के चलने की आवाज से सीता की नींद टूटती है। क्रोधित राम से सीता विचलित नहीं होती। चतुरा सीता रामको कहती है. ''तू, एक हाथ से ताली बजा और एक लकड़ी घीसकर आग प्रगट कर!'' राम एक हाथ से ताली बजाने और एक लकड़ी से आग प्रगट करने के प्रयत्न करते हैं! किन्तु वे निष्फल होते हैं। अंत में सीता राम को ज्ञान की वाणी सुनाती ''हम, दोनों को देह तो छुई तक नहीं! जिस तरह एक हाथ से ताली नहीं बजती और एक लकड़ी से आग नहीं प्रगटती; उसी तरह एक शरीर से कुछ नहीं होता!''

राम का पुरुष सहज अहं यहाँ गलने लगता है। वे लज्जित होते हैं। सीता राम को कुआँ खोदने के काम में जोतती है। यहाँ महामार्गी जीवन दर्शन के प्रभाव में सीता का नीजी व्यक्तित्व सहज रूपमें निखरता है।

स्त्री के व्यक्तित्व का स्वीकार

आदिवासी मौखिक साहित्य में स्त्री के व्यक्तित्व को सहज स्वीकार की जो मनोवृत्ति है, दृष्टिकोण है, उसके मूल में आदिवासी समाज में नारी की शक्ति का स्वीकार है, जो अन्य ग्राम या नगर साहित्य (शिष्ट साहित्य) और महाकाव्यों में दुर्लभ है। स्त्रीशक्ति का स्वीकार करने से ही आदिवासी पुराकथाओं और लोकमहाकाव्यों में स्त्री का देवीकरण हुआ है। इस धारा में उमिया, अंबाव, कुवारका, चामुंडा आदि देवियाँ प्रमुख हैं। ये देवियाँ अयोनिजा होती हैं। **आप मातर:** ऋग्वेद में माताओं की बहुलता है। वैसी ही भीलों के देवरानी वारता में नवलाख देवीओं की कल्पना है। ऋग्वेद में चर्णित अदिति से भव्य और विशद आदिमाता की कल्पना अन्यत्र नहीं है जो भीलों की अंबावदेवी के साथ सर्वथा सादृश्य रखती है। जलप्रलय से पृथ्वी पर देवी-देवता को पृथ्वी पर लानेवाली अंबावदेवी है। अंबावदेवी कर्ता के स्थान पर है और अन्य पुरुषदेवता कर्म के स्थान पर हैं।

शिष्ट समाज में स्वतंत्र रूप से सीता या द्रौपदी की उपासना नहीं होती। नागर समाज में सीता और राधा हैं वे राम और कृष्ण संलग्न उपास्य हैं। जब 'भीलों का भारथ' और 'राम-सीतमानी वारता' में द्रौपदी, कुंती, सुभद्रा, सीता आदि प्रमुख नारी चरित्रों का नीजी-अपना व्यक्तित्व है। वे स्वतंत्र रूप में पूज्य मानी गई हैं।

'भारथ' में सामाजिक-नैतिक अन्याय-अत्याचार के सामने विद्रोह और प्रतिकार भी नारीचेतना का प्रबल रूप है। आतिथ्य सत्कार के लिए इन्द्र के साथ आयी इन्द्राणी को अतिथि साधु कामुक शारीरिक चेष्टा करते हैं। अत: वह साधु और इन्द्र के सामने विद्रोह करके इन्द्रपुरी का त्याग करती है और पृथ्वी पर हस्तिनापुर में आकर अभिमन्यु के साथ गृहसंसार शुरू करती है। नारी के स्वनिर्णय की ऐसी स्वतंत्रता और खुमारी भील महाकाव्यों में अनेक स्थलों पर देख सकते हैं।

उनका नीजी व्यक्तित्व वाम परिस्थितियों में ही निखरता है। इसके विपरित शिष्ट महाकाव्यों की नारियाँ ज्यादातर अकर्मणीय होती हैं। वे परिस्थितियों के सामने बेबस-बेचारी बन जाती हैं।

शिष्ट महाकाव्यों से तुलना

आदिवासी मौखिक महाकाव्यों में पितृसत्ताक समाज के आदर्श, खयाल और मान्यताओं के कृत्रिम प्रभाव के बिना स्त्री के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास हुआ है उसका कारण स्त्री की साहित्य और जीवन में सहभागिता है। अत: आदिवासी स्रोत की सीता, कौशल्या, कैकेयी, अंजनी, भंजनी, द्रौपदी, कुंती, सुभद्रा, गांधारी, इंद्राणी जैसे नारी-चरित्र वाल्मीकि और व्यास जैसे शिष्ट या नागरिक प्रवाह के कवियों के नारी-चरित्रों से अलग पड़ते हैं। शिष्ट साहित्य के सृजक पुरुष होने से पुरुष के भावों का ही ज्यादा प्रकटीकरण हुआ है। वाल्मीकि और व्यास जैसे शिष्ट महाकाव्यों के सृजकों ने पुरुष के दृष्टिकोण से पतिपरायणता, पतिभक्ति, सतीत्व जैसे पितृसत्तात्मक या पुरुषप्रधान समाज के खयालों, मान्यताएँ या आदर्शों को चरितार्थ करने के लिए ही स्त्री-चरित्रों का सृजन किया है। अत: सीता, कौशल्या, कैकेयी, अहल्या, द्रौपदी, कुंती इत्यादि स्त्रियाँ कृत्रिम आदर्शों के भार तले दब गई हैं; कुचल गई हैं और आहत हुई हैं। परिणामत: उनके व्यक्तत्व का विकास आदिवासी स्त्री-चरित्रों जैसा स्वाभाविक हो सका नहीं है।

सभी शिष्ट समाजों ने स्त्री के लिए सुचिता, सतीत्व एवं एकनिष्ठा आदि मूल्य अनिवार्य माने हैं और अंधपति की पत्नी के ज्योतिमंडित नेत्रों पर पट्टी बँधवा दी गई। पत्नी को पराये पुरुष के आश्रय में रहना पड़ा तब स्त्री की अग्निपरीक्षा की गई। फिर भी लोकसमुदाय में व्यर्थ चर्चा हुई तब निर्दयता से उसका त्याग किया गया! पाँच की समान पत्नी के लिए 'जो लाये हैं वह बाँटकर भोगो' ऐसे माता के कृत्रिम वचनों की रचना करनी पड़ी! पाँच की पत्नी होते हुए भी सती है, यह सिद्ध करने के लिए अन्य तरह तरह की कथाएँ द्रौपदी के साथ जोड़ी गई! ऐसा किसी आत्मप्रवंचना से भरा किसी प्रकार का नकली समाधान आदिवासी मौखिक महाकाव्यों में देखने को नहीं मिलेगा। जो जैसा है वैसा ही साहजिक रूप में, किसी भी प्रकार के दंभ या छल बिना आदिवासी मनोवृत्ति स्त्री की महत्ता और मर्यादा को स्वीकारती है और अंकित करती है। परिणामत: आदिवासी सीता को अपने शील के लिए न तो अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है वा न तो अपमानित होकर धरती में समाहित हो जाना पड़ता है। वह समग्र नगरजनों के बीच गौरव और सम्मान के साथ सदा के लिए गृह प्रवेश करती है। 'भारथ' में भी गांधारी को शिष्ट लिखित महाकाव्य की तरह हस्तिनापुर लाने के लिए न तो किसी छद्म का आश्रय लेना पड़ता और न तो अंध धृतराष्ट्र के सन्मुख सतीत्व सिद्ध करने के लिए नेत्रों पर पट्टी बाँधनी पड़ती है। यहाँ अर्जुन जैसे वीर को वासुकी मूँछ के बाल से बाँधकर, खूँटी पर लटकाकर उसकी नजर के सामने द्रौपदी को भोगता है! फिर भी पत्नी भ्रष्ट हुई है ऐसा किसी भी प्रकार का प्रत्याघात अर्जुन के मन में देखने को नहीं मिलता। इसमें स्त्री के प्रति औदार्य का भी भार नहीं। जो है वह समझ है और स्त्री के वास्तविक व्यक्तित्व का स्वीकार है। आदिवासी स्त्रोत के सिवा अन्यत्र ऐसा

मानवीय और कृतिम आदर्शों के आवरण से रहित सहज निरूपण संभव नहीं है।

यह साहजिकता उनके मौखिक साहित्य तक ही सीमित नहीं। उनकी गोठिया (प्रेमी) विषयक वर्तमान में प्रचलित जीवनरीति में भी स्त्री की यौन मुक्तता और उसके व्यक्तित्व के स्वीकार के सहज दर्शन होते हैं। कन्या के विवाह पूर्व के यौन संबंध से हुई संतान के प्रति किसी भी प्रकार की नैतिक या सामाजिक धृणा बीच में लाए बिना पति स्वीकारता है। इस तरह भीलों का साहित्य; समकालीन वैयक्तिक शिष्ट साहित्य की तरह समाज जीवन से भिन्न नहीं हैं। उनका लोकसाहित्य सांप्रत जीवन का अभिन्न अंग है।

वाल्मीकि और व्यासने स्त्री और उसके चरित्र को कितने ही उच्च आदर्शों से मंडित किया हो, फिर भी पुरुष होने के नाते उनके मन में प्रगट या प्रसन्नरूप में स्त्री पुरुष की संपत्ति ही है। पुरुष के स्त्री के प्रति इस दृष्टिकोण के कारण ही युधिष्ठिर द्रौपदी को अपनी संपत्ति मानकर द्यूत के दाव पर लगाते हैं और वस्त्राहरण की करुण घटना घटती है। 'भीलों का भारथ' में वर्णित स्त्री-चरित्रों पर पितृसत्ताक समाज के आदर्श, खयाल या मान्यता का कोई विशेष बोझ न होने से द्रौपदी को द्यूत के दाव पर लगाने और वस्त्राहरण की घटना तो दूर की बात रही किन्तु, दाँत तले तिनका दबा के पांडव पिता के मोक्ष के लिए द्रौपदी के चरणों में गिर कर मार्गदर्शन माँगते हैं और उसकी निगरानी में सेनेतरो यज्ञ करते हैं। कृत्रिम संस्कृति के भार से मुक्त ऐसी इस वास्तविक समझ के मूल, प्रकृति के सान्निध्य में बसे आदिवासियों के सहज और निर्दंभ दृष्टिकोण और महामार्गी जीवनदर्शन में है।

'भारथ', और राम-सीतमा मौखिक साहित्य के विरल महाकाव्य

'राम सीतमानी वारता' और 'भीलों का भारथ' में स्त्री के प्रमुख तीन स्वरूप दुहिता, पुत्रवधू-पत्नी और माता बिना लिंग भेद या बिना सामाजिक-धार्मिक तथा राजकीय स्तर भेद, समान अधिकार प्राप्त करते हैं । इतना ही नहीं, दासी जैसे सामान्य स्त्री-पात्र भी राजा या रानी के व्यक्तित्व से प्रभावित नहीं हैं। यहाँ बाघ, गिलहरी, बंदर जैसे प्रकृति तत्त्व भी भाई-मामा जैसे सामाजिक संबंध स्थापित करते हैं। यहाँ नहीं तो अपने उच्च जाति के अहं से प्रभावित करता ब्राह्मण समाज या नहीं तो अन्य समाजों को डरावना लगता और नीच माने जानेवाला राक्षस समाज। अत: यहाँ रावण का उल्लेख राजा के अलावा राक्षस के रूप में नहीं हुआ है। भारथ में भी भीम और बक राक्षस का प्रसंग नहीं है। यहाँ मानव जगत एवं प्रकृति जगत एक समान मानवीय भूमि पर विचरण करता है। इसका प्रमुख कारण भीलों का समतावादी महामार्गी जीवनदर्शन है।

'भारथ' में युद्ध का केन्द्र स्त्री नहीं किन्तु पांडव-कौरव के बीच भूमिखंड का असमान बँटवारा है। पांडव और कौरवों का पहले से ही अपना-अपना अलग स्वतंत्र राज्य-हस्तिनापुर और धवलगढ़ है। स्त्री यहाँ जीवन के किसी भी प्रसंग या स्थान पर असहाय, लाचार या अपमानित नहीं है। वह नहीं तो पुरुष से अपमानित होकर आँसू बहाती या नही! तो पुरुष से आतंकित होकर शाप देती या उसके विरुद्ध हृदय में वैराग्नि जलती रखती। 'भारथ' में राजकीय, धार्मिक और सामाजिक सत्ता कुंती-द्रौपदी जैसी कारोबार-कुशल स्त्रियों के हाथ में है। स्त्रियाँ यहाँ राजकीय, धार्मिक और सामाजिक व्यक्तित्व के साथ, सशक्तिकरण के साथ प्रगट होती हैं। वे भी पुरुषों को आतंकित नहीं करती किन्तु जहाँ भी पुरूष भूल करते हैं वहाँ राजकीय, सामाजिक और धार्मिक जीवन की मार्गदर्शक बनती हैं। इन अर्थों में 'भारथ', एवं राम - सीतमा स्त्रीजीवन के अनेक स्वतंत्र स्वरूपों को प्रकट करता और स्त्री के व्यक्तित्व का गौरवगान करता भारतीय मौखिक साहित्य के विरल के लोकपहाकाव्य हैं। और इसके परंपरित लोकधर्मी-महामार्गी-समतावादी जीवनदर्शन से आज के नारीवादी दार्शनिक भी अपने नये जीवनमूल्य गढ़ सकते हैं। इसमें 'राम-सीतमानी वारता' काफी हद तक सहायक हो सकती है।

पादटीप

1. राम सीतमानी, संपा. डॉ. भगवानदास पटेल, मनोगत पाठ, (हस्तप्रत)
2. भीलों का भारथ, संपा. डॉ. भगवानदास पटेल, प्रका: साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति, 2000
3. भील लोकमहाकाव्य: राठोर वारता, संपा: डॉ. भगवानदास पटेल, प्रका. : गुजरात साहित्य अकादमी, गांधीनगर, प्रथम आवृत्ति,1992
4. गुजरांनो अरेलो, संपा. : डॉ. भगवानदास पटेल, प्रथम आवृत्ति, 1993
5. ज्ञान गंगोत्री ग्रंथ श्रेणी - भारत दर्शन -1 (इतिहास : आदि युग) प्रवीणचंद्र चि. परीख, पृ. 1
6. हिन्दू सभ्यता, राधाकुमुद मुखर्जी, पृ. 38
7. महाधरम, सत्या पढ़ियार, पृ. 1
8. राम-सीतमानी वारता, डॉ. भगवानदास पटेल (हस्तप्रत), पृ. 222
9. एजन, रो.वा., डॉ. भ.प., 266
10. एजन, पृ. 268

लेखक- वरिष्

संपर्क- 304, मिथिला एपार्टमेन्ट, विजया बैंक के ऊपर,
जजीस बंगला चार रास्ता, अहमदाबाद-380015(गुजरात)
फोन :-(079) 26871604

■

आलेख

अवनद्य वाद्यों के वादन में प्रयुक्त वर्ण ''धा'' का प्रादुर्भाव एवं इसकी महत्ता

पं. गिरीन्द्र चन्द्र पाठक

अवनद्य वाद्यों में पखावज एवं तबला का स्थान अत्यन्त लोकप्रिय है। इनके वादन में अनेक वर्ण एवं बोल समूह प्रयुक्त होते हैं किंतु सबसे महत्वपूर्ण वर्ण है 'धा', जिसके बिना कुशल वादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। 'धा' वर्ण की ध्वनि पखावज एवं तबला वादन में पूर्णता, कुशलता एवं विलक्षणता को प्रदर्शित करती है। कहा भी गया है-

''गुणिजन 'धा' को साधिए, बिनु 'धा' के सब सून।
टुकड़ा हो या गत, फ़र्द वादन दीखे न्यून।।''

'धा' की मर्यादा में अभिव्यक्त यह उक्ति अक्षरश: सत्य हैं किंतु प्रश्न सामने यह आता है कि 'धा' वर्ण को ही वादन हेतु क्यों चयन किया गया और इस चयन के पीछे कला-मनीषियों ने कौन सा मान्य आधार स्वीकार किया होगा? वस्तुत: 'धा' की उत्पत्ति या प्रादुर्भाव के विषय में संगीत शास्त्रों में कहीं वृहत चर्चा नहीं मिलती, इसलिए यह प्रश्न बिना किसी शास्त्रीय आधार के अनुत्तरित ही रहा जबकि प्रायोगिक वादन में सदैव ही 'धा' का सर्वश्रेष्ठ योगदान रहा है। मेरी व्यक्तिगत मान्यता है कि इस प्रश्न के उत्तर हेतु हमें निश्चित रूपेण अपने अध्यात्म एवं सनातन धर्म की ओर अवलोकन करना चाहिए क्योंकि हमारे समस्त देवी -देवता संगीत की किसी न किसी विधा से अवश्य जुड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, माँ सरस्वती -वीणा वादिनी, श्री गणेश -मृदंगाचार्य, सूर्य शिष्य श्री हनुमान- गायनाचार्य, नटराज भगवान महादेव एवं नटवर श्री कृष्ण- नृत्याचार्य इत्यादि अनेक देवी- देवता अपनी सांगीतिक सम्पन्नता के लिए पूजित रहे हैं। वृंदावन धाम, लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण की प्रेममयी नगरी है जहां एक ओर उनकी मुरली की मधुर ध्वनि सुनकर सभी जीव-जंतु सुध- बुध खोकर पीछे चल पड़ते थे, वहीं दूसरी ओर श्री कृष्ण स्वयं राधा नाम के उच्चारण मात्र से आज भी अपने भक्तों को सर्व सम्पदा देने को आतुर हो जाते हैं। इसके पीछे शास्त्रों का यही कहना है कि भगवती राधा भगवान कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं एवं राधा नाम कृष्ण को सर्वाधिक प्रिय है जिस पर वे सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। यही कारण है कि आज भी वृंदावन की गलियों में हर नर-नारी अपने दैनिक जीवन के सामान्य कार्यों में भी कृष्ण नाम नहीं लेकर राधा नाम का ही उच्चारण करते हैं क्योंकि कृष्ण अपने नाम की अपेक्षा राधा नाम सुनकर अतिशय प्रसन्न होते हैं। इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि ''राधा'' शब्द अत्यंत महान है जिसमें त्रैलोक्य नियंता को भी आकर्षित करने की शक्ति है। इस शब्द का प्रारंभ ''रा'' अक्षर से अवश्य होता है किन्तु इसकी पूर्णता ''धा'' में ही समाहित होती है। प्रामाणिक पुस्तक ''श्री राधा माधव चिंतन'' एवं कृष्ण भक्त आचार्यों ने ''राधा'' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है-

''रा शब्दोच्चारणादैव स्फीतो भवति माधव:।
''धा'' शब्दोच्चारणात् पश्चात् धावत्यैव ससमभ्रम:।।

अर्थात ''राधा'' शब्द में ''रा'' का उच्चारण सुनते ही श्री माधव हर्ष से फूल उठते हैं और ''धा'' सुनते ही बड़े आदर भाव से भक्तों के पीछे-पीछे दौड़ पड़ते हैं। इतना ही नहीं ,इसके आगे के श्लोक में ''धा'' की और भी स्पष्ट व्याख्या की गई है एवं राधा नाम के वृहत आध्यात्मिक महत्व का वर्णन किया गया है -

''रेफोहि कोटि जन्माघम् कर्म भोगम् शुभाशुभम्।
आकाराद् गर्भवासम् मृत्युं रोगम् च उत्सृजेत।।
'ध' कार आयुषोहानिं आकारो भव बंधनम्।
श्रवण स्मरणोक्तिभ्य: प्रणष्यति न संशय:।।

अर्थात, राधा नाम के प्रथम अक्षर 'र' का उच्चारण करते ही करोड़ जन्मों के संचित पाप एवं शुभ-अशुभ कर्मों के भोग नष्ट हो जाते हैं। (।) आकार के उच्चारण से गर्भवास (जन्म), रोग और मृत्यु के भय छूट जाते हैं।'ध' के उच्चारण से आयु की वृद्धि होती है और अंतिम पुन: (।) आकार के उच्चारण से जीव भव बंधन से मुक्त होकर परम तत्व में विलीन हो जाता है।

निश्चय ही हमारे कला-मनीषी पूर्वजों ने इसी आलोक में ''धा'' की मर्यादा को अवनद्य वाद्यों के वादन में प्रतिष्ठित किया

होगा, ताकि 'धा' की पावन ध्वनि के माध्यम से कलासाधक स्वस्थ एवं चिरंजीव रहकर सुगमता पूर्वक अपने प्रारब्धों से मुक्ति पाकर परम तत्व को प्राप्त कर सकें। ऐसे उच्चस्तरीय चिंतन वाले देव स्वरूप प्राचीन कला-मनीषियों को बारंबार नमन, जिन्होंने संगीत को देवाराधन का सरलतम सोपान माना एवं अवनद्य वाद्यों के लिए 'धा' अक्षर का महामंत्र प्रदान कर कला साधकों के लिए इह लोक से लेकर परलोक तक की यात्रा का मार्ग प्रशस्त किया है।

लेखक - वरीय कलासाधक एवं समीक्षक हैं।
मुंगेर (बिहार)

वृत्तांत

हरिरामव्यास : एक पकौरी सब जग छूट्यौ

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

हरिरामव्यास ओरछा के राजपंडित थे, किन्तु मन में वैराग्यभाव आया,
वे वृंदावन आ गये।
ओरछा-महाराज बार-बार संदेश भेजते,
अपने आदमियों को वृंदावन भेजते कि > ओरछा के राजपंडित हरिरामव्यास ओरछा पधारें!
व्यासजी >अच्छा, कहते और टाल देते !
ओरछा-महाराज ने आदेश दिया कि > अबकी बार तो व्यासजी को साथ लेकर ही आना है ।
ओरछा के वे राजपुरुष अटक गये कि अबकी बार तो चलना ही होगा ।किन्तु व्यासजी तो वृंदावन के रस में डूब चुके थे।
कर करवा गुंजन के हरवा कुंजन मांहि बसेरौ ,
ऐसौ कब करि हौ मन मेरौ !
वह मन:स्थिति बन चुकी थी ,
जिसमें बैकुंठ भी न भावै ।
व्यासजी ओरछा के राजपुरुष से बोले >>>
चलो, राधावल्लभलाल के दर्शन कर आवें !
मन्दिर आने पर मालूम हुआ कि राजभोग के दर्शन तो हो चुके !
मेहतरानी अपनी डलिया में श्रीजी का प्रसाद लेकर जा रही थी ।
व्यासजी का नियम था कि वे श्रीजी का प्रसाद लेकर ही भोजन करते थे !
उन्होंने मेहतरानी की डलिया में से कढी-प्रसाद की पकौडी निकाली और खा ली !
ओरछा के लोग चिल्लाये > व्यासजी अब ब्राह्मण नहीं रहे !
चलो, अब वापस चलो !
उस समय प्रसन्न होकर व्यासजी ने एक पद गाया था >
एक पकौरी सब जग छूट्यौ ।
व्यास दास हरिवंश कृपा ते बसि बन- राज प्रेमरस लूट्यौ !!

हेमन्त उपाध्याय लघुकथा श्री से सम्मानित हुए

पद्मश्री राम नारायण उपाध्याय के नाम का सम्मान श्री सोढ़ी जी को दिया। लघुकथा दिवस की पूर्व संध्या पर हेमंत उपाध्याय की कृति तखत की तखत पर हेमंत शिव नारायण उपाध्याय को लघुकथा श्री सम्मान से सम्मानित किया गया। यह सम्मान श्री विकास दवे साहब, कांता राय ने प्रदान किया। इस दौरान देश भर से आये सेकडों साहित्यकार उपस्थित थे।

इस सम्मान के पूर्व लघुकथा शोध संस्थान ने पद्मश्री राम नारायण उपाध्याय की स्मृति में स्थापित सम्मान श्री सोढ़ी इंदौर को शाल मोतियों की माला स्मृति पट देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का आयोजन रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय एवं वनमाली सृजन पीठ भोपाल के सहयोग से लघुकथा दिवस के अवसर पर आयोजित लघुकथा शोध केंद्र समिति भोपाल का आयोजन लघुकथा पर्व का था।

वृत्तांत

ऋग्वेद

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

वैदिक–छन्दों / मन्त्रों / स्तुतियों को ऋचा कहा जाता है! बहुत सी ऋचाओं को मिला कर सूक्त बनता है! वेद में बहुत से सूक्त हैं! इन सूक्तों का संपादन–संकलन संहिता कहा जाता है!

ऋग्वेद भी संहिता है! उस जमाने में लिखने की परंपरा नहीं थी, सुनने और याद करने की परंपरा थी, इसलिए इनको श्रुति कहा जाता था! वेदव्यास ने इन संहिताओं को क्रमबद्ध किया, संपादन किया था!

ऋग्वेद में 1017 सूक्त हैं! 11 सूक्त परिशिष्ट के हैं, जिन्हें बालखिल्य सूक्त कहा जाता है! ये 1017 सूक्त दस मंडलों में वर्गीकृत किये गये हैं!

पहले मंडल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि मधुच्छन्दा हैं, मधुच्छन्दा विश्वामित्र के पुत्र थे! फिर दूसरे मंडल के ऋषि हैं > गृत्समद! विश्वामित्र तीसरे मंडल के ऋषि हैं, इसी मंडल में ब्रह्मगायत्री है! वामदेव चौथे मंडल के द्रष्टा ऋषि हैं!,पंचम मंडल के द्रष्टा ऋषि महर्षि अत्रि हैं! ऋग्वेद के छटे मंडल के द्रष्टा ऋषि भरद्वाज हैं! वसिष्ठ सातवें मंडल के ऋषि हैं! आठवें मंडल में महर्षि कण्व और उनके गोत्रज ऋषियों का मन्त्रवैभव है, नवें और दसवें मंडल में अनेक ऋषियों का उल्लेख है > वैवस्वत मनु, शिवि, औशीनर, प्रतर्दन, मधुच्छन्दा, आंगिरस, देवापि आदि! लोपामुद्रा भी ऋषि हैं!

ऋग्वेद का एक संपादन अष्टक के आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है! इन ऋचाओं में धरती से लेकर सौरमंडल तक की विश्वशक्तियों की महिमा का गायन किया गया है!

पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त, नासदीयसूक्त संज्ञान सूक्त अक्ष सूक्त ऋग्वेद के महत्वपूर्ण सूक्त हैं!

अनेक संवादसूक्त भी महत्त्वपूर्ण हैं >> जैसे पुरूरवा–उर्वशी–संवाद ,यम–यमी–संवाद सरमा–पणि–संवाद विश्वामित्र–नदी–संवाद अगस्त्य–लोपामुद्रा–संवाद इन्द्र–इन्द्राणी–वृषाकपि–संवाद विश्वामित्र–नदी–संवाद वशिष्ठ–सुदास–संवाद आदि!

यूरोप में ऋग्वेद का सबसे पहला अनुवाद जर्मन में प्रकाशित हुआ [1951] यह अनुवाद कार्लगेल्डर ने किया था! तात्याना येलिजारेन्कोवा ने रूसी भाषा में ऋग्वेद का अनुवाद किया! 1986 में येलिजारेन्कोवा ने ऋग्वेद का अध्ययन करते हुए कुछ नये तथ्य भी प्रद्तुत किये और इसमें स्लाव–जन के साथ–साथ सेल्ट, ग्रीक, जर्मन तथा अन्य इंडोयूरोपीय जातियों के सांस्कृतिक – परंपराओं का भी उल्लेख लिया और इंडो–ईरानी मिथकशास्त्र की भी तुलना की! रूस में ऋग्वेद का यह अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुआ और इसकी चालीस हजार प्रतियाँ बिक गयीं! येलिजारेन्कोवा ने कहा कि सुदूर अतीत में वैदिक–साहित्य का संबंध रूसी जनगण के साथ भी गुथा हुआ है! उन्होंने ऋग्वेद में कालासागर स्थित स्थानों, नदियों के नामों की पहचान की तथा काकेशस में प्राप्त रथों के आलेखों में मध्य एशिया से प्राप्त बर्तनों के रूप और नामों में एवं धरती के गर्भ में छिपे हुए अन्य पुरातत्त्वों की खोज के लिए सहायक अध्ययन–सामग्री के रूप में भी रेखांकित किया !

आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल भारतविद्या के मूर्धन्य–विद्वानों में थे! उन्होंने लिखा था > जब से मैने दीर्घतमस ऋषि के अस्यवामीयसूक्त की व्याख्या लिखी, तब से मुझे विश्वास हो गया है कि वेदविद्या सृष्टिविद्या है! यही सनातनी योगविद्या है! इसी सूक्त का एक वाक्य है > **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।** इसी सूक्त में दीर्घतमस ऋषि कहते हैं > द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया ऋ1.164.20। एक ही डाल पर सुन्दर पंखों वाले दो पक्षी बैठे हैं ,जिनमें से एक पक्षी उस पेड के फल को खा रहा है तथा दूसरा पक्षी उस फल को देख रहा है! ऋग्वेद का वाक्य है–**नासदासीन्नोसदासीन्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत**। जगत था! नहीं था! सृष्टि चेतन थी, अचेतन थी, आदि से चेतस विद्यमान था, तब था अव्यक्त एवं व्यक्त की प्रक्रिया का सर्वसाक्षी आकाश।

ऋग्वेद ने कहा कि जाति नहीं कर्म आगे बढाता है।> कवष

ऐलूष। यह शूद्र था। जुआरी भी था। ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 30-34 का द्रष्टा। इसने अक्षसूक्त भी लिखा था, जिसमें इसने अपने से ही कहा है कि > मत खेल जुआ। इसका एक सूक्त विश्वेदेवा को समर्पित है। एक अपां-नपात को। ऋग्वेद ने कहा – हमारे सोचने के तरीके में समन्वय का भाव हो, हमारे हृदयों में समानता के भाव हों, हमारे मन परस्पर संवादी हों, जिससे हम सब एक साथ सुख से रह सकें! समानी व: आकूति- **समाना हृदयानि व: समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।** ऋग्वेद 10.191.4। ऋग्वैदिक मंत्र है – **''संगच्छध्वं संवदध्वं सर्वे मनांसि जानताम्** (19/191/2)

ऋग्वेद ने कहा – **सक्तुमिव तितौना पुनन्तो, यत्र धीरा मनसा वाचमकत। अत्र सखाय: सख्यानि जानते, भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।** जैसे सत्तू को छाना जाता है, भूसी अलग की जाती है। अनाज का शुद्ध- तत्व ग्रहण कर लिया जाता है, उसी प्रकार ध्यान-परायण मनीषियों ने मन:पूत वाणी की रचना की। भाषा का उदात्त-रूप। यह वाणी है, जिसमें मित्र लोग मैत्री की पहचान कर लेते हैं, जो परस्पर-मित्रत्व को पा चुके हैं, उनकी शोभा इसी वाणी में निवास करती है। ऋग्वेद [10-75-5] में भारत की नदियों की गंगा, यमुना, शुतुद्रि= सतलज, पयोष्णी =रावी, असिक्नी= चिनाव, वितस्ता = व्यास, मरुद्वृधा= संगम, आर्जीकीया= झेलम, सुषोमा = सिन्धु की वन्दना है! **इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णया।असिक्न्या मरुद्वृधे विवस्तयार्जिकीये शृणुह्या सुषोमया।** डा.रामविलास शर्मा ने ऋग्वेद का अध्ययन किया, फिर बोले> यूनान और भारत के दर्शन का विवेचन ऋग्वेद को छोड कर नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद बहुत ऊंचे दर्जे का दार्शनिक-काव्य है। इसके बिना भारतीयसाहित्य के विकास का विवेचन नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद और अथर्ववेद अनेक जनपदों की संस्कृतियों का संगम है।

ऋग्वेद ने बतलाया कि काम सृष्टि का मूल और मन का बीज है: काम ही मनुष्य की राग अथवा रसवृत्ति का स्रोत है!

कामस्तदग्रे समवर्ततादि मनसो रेत: प्रथमं य आसीत।
सतो बन्धुमसति निरविन्दं हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।
[ऋक 10 सूक्त 129,]

कवियों ने मन्थन किया तथा सत और असत का संबंधसूत्र खोज निकाला, सत का स्रोत असत में खोजा, असत में सत को जन्म देने वाला काम है। काम मन का पहला स्पन्दन है। नासदीयसूक्त [4] की स्थापना है कि ब्रह्म के मन का रेत अर्थात बीज प्रथमत: निकला, वही सृष्टि की शक्ति है।

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला ने बयालीस वर्षों में अनवरत अनथक परिश्रम कर के वैदिक ऋचाओं का नव-रूपान्तर किया है,जो ''वैदिक कविताएँ'' शीर्षक से प्रकाशित हो चुकी है।

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

आलेख

गांव-गांव भगवान राम की चित्रात्मक कथा का दरसाव

डॉ. कहानी भानावत

भारत सदैव ही धर्म और अध्यात्म की देवभूमि रहा है। यहां जितने देवी-देवता विद्यमान हैं, उतने विश्व में अन्यत्र किसी छोर में नहीं मिलेंगे। यहां का जनसमुदाय इन्हीं लोकदेवी-देवताओं के भरोसे अपना जीवन यापन करता है। इन देवी-देवताओं में भगवान राम के प्रति जन-जीवन की जो अटूट आस्था, श्रद्धा और सेवा-पूजा देखने को मिलती है वह अनुपम और अद्‌भुत है।

राम की जीवन-कथा का अनेकों कवियों और लेखकों ने अनेक ढंग से वर्णन किया है। शास्त्रों और ग्रन्थों में उनके सम्बन्ध में जो लिखा गया है उससे सभी एकमत नहीं हैं। लोकजीवन में देश के विभिन्न अंचलों में राम-कथा के गायन, वाचन और प्रदर्शन के विविध तरीके प्रचलित हैं। कपड़े तथा लकड़ी के पाटियों पर परम्परागत रंग-बिरंगे चित्रों से राम-कथा की जीवन-गाथा का प्रचलन सैकड़ों वर्षों से देखने को मिलता है। राजस्थान में विशिष्ट प्रकार के पट्ट अथवा कपड़े पर बने चित्रों के रूप पड़ अथवा फड़ चित्र प्रचलित हैं वहीं लकड़ी के पाटों पर चितेरों द्वारा चित्रित चित्रों का आकर्षक दरसाव मिलता है।

डॉ. महेन्द्र भानावत ने बताया कि प्रारम्भ में लकड़ी की पटड़ी पर रामकथा के चित्रों को लिए जो गायक गांव-गांव घूमते थे उसे 'रामजी की पटड़ी' कहते थे। बाद में इसे 'कावड़' कहा जाने लगा। यह कावड़ विभिन्न कपाटों का जड़ाव लिए एक छोटी-सी मन्दरी है जिसे कावडिया़ भाट अपनी बगल में दबाये गांव-गांव फेरी लगाता और अपनी मधुर गायकी द्वारा प्रत्येक चित्र को मोरपंख का छुअन देकर भक्तों को दर्शन-लाभ देता है। बदले में दान-दक्षिणा के रूप में धान-चून, कपड़े-लत्ते, खेत-कुए, गाय-बैल, ऊंट-गाड़ी, गहने-गांठे आदि प्राप्त कर अपनी गृहस्थी को पालता लेकिन चित्र बनाने वाले की अलग जमात होती जो खैरादी अथवा सुथार कहलाये।

इस दृष्टि से चित्तौड़ जिले का बस्सी गांव बड़ा प्रसिद्ध रहा है। यहां के खैरादी लकड़ी के माध्यम से कावड़ के अलावा और भी काष्ठ-कला के अनेक अंकन बनाते हैं जिनसे विविध प्रकार के मांगलिक त्यौहार, उत्सव एवं संस्कार जुड़े हुए हैं। इनमें ईसर-गणगौर, तोरण, बाजोट, माणकथम्ब, चौपड़े, खांडे, मुखौटे, वेवाण, कठपुतलियां तथा देवी-देवताओं के विविध रूप विशेष महत्त्व रखते हैं।1

कावड़ आठ अथवा दस पाटों का छोटा-सा मन्दिरनुमा पिटारा होता है। इसके अन्त में भगवान के दर्शन के रूप में राम-सीता और लक्ष्मण की लघु आकारी काष्ठ निर्मित प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं। पूर्व में काशी की यात्रा कर लोग अपने को धन्य मानते इस भव का जीवन ही नहीं परभव का जीवन भी सार्थक हुआ समझते थे। कावड़ के साथ भी यही घटना घटी।

प्रारम्भ में जब कावड़ का प्रचलन शुरू हुआ तो इसकी पवित्रता की प्रामाणिकता बनाये रखने के लिए कावडिया़ भाट ने काशी की तीर्थयात्रा की और वहां की ब्राह्मणी कुन्दणाबाई की छाप से इसे जारी किया। कुन्दणाबाई वहां की अन्नपूर्णादेवी की प्रमुख स्वीमिनी थी। कावड़ के ऊपर की लिखावटें इसका सबूत हैं। लिखावट इस प्रकार मिलती है-

(अ) या कावड़ कासीपुरी रे अन्नपूरणा देवी रे मंदर में बणे।

-द: कुन्दणाबाई बामणी।

(ब) या कावड़ धूप दे'र खुलावे वंडी सात पींडी सरग में जावे। सच मानो, जूट मत मानो।

-द: कुन्दणाबाई बामणी।

(स) सच मानो। जूट मत मानो। जो कावड़ की नासती करे वो नरक में जावे। (आधी खुलावे तो 1 रूपया) (आखी का 2 रूपया)

-द: कुन्दणाबाई बामणी।

(द) ये गोसाला की पेटी है। जो दान करे वो मारे पां आवे। दानऊं

गायां ने घास पड़े। मारी हजार कावड़ां फरे

–द: कुन्दणाबाई बामणी।

(य) या गुपत की वाड़ी है। जो दान करे वो अणी में आवे।

–द: कुन्दणाबाई बामणी।

गोशाला की पेटी में दान आई राशि गायों को घास आदि डालने से स्पष्ट है कि कावड़ फिराने का मुख्य उद्देश्य गायों की रक्षा एवं पालन-पोषण है। आज भी ऐसी अनेक गोशालाएं खुली हुई हैं जहां गायों की भलीप्रकार देखरेख होती है। गांवों के अलावा कबूतरों के लिए चुग्गा डालने के लिए गांव-गांव पेटी घुमाने की परम्परा रही जिसे 'कबूतर पेटी' कहते।

कावड़ वाचक प्रारम्भ में अपना परिचय देता हुआ फिर रामायण कावड़ बांचने की घोषणा करता है। यथा-

(1) रियासत जोधपुर के रेणे वाले हैं। गाम हमारा भोपालगड़ है। कोमी के राव है। नाम हमारा शैतानसिंघ है।

(2) ये श्री भगवान रामचन्द्रजी की रामायण कावड़ पड़ते हैं। इसको आप ध्यान लगाकर सुणिये। ये श्री रामचन्द्र भगवान की कावड़ है।[2]

इस प्रकार सभी पाटों के आगे-पीछे अंकित चित्रों में भगवान राम के जन्म से लेकर उनके वनवास से अयोध्या लौटने और राज्याभिषेक करने तक की चित्रावली दिखाई जाती है जैसे एक-के-बाद-एक सिनेमाई चित्र दिखाई जा रहे हों। भक्त लोग हाथ जोड़ते हुए एकाग्रचित्त से उन चित्रों से साक्षात्कार कर घर आई गंगा-सा पुण्य महसूस करते हैं।

धीरे-धीरे इन चित्रों के साथ भक्तों की अभिरूचि देखते रामायण के साथ महाभारत की कथा के चित्र भी सम्मिलित किये जाने लगे। यही नहीं, इन चित्रों के साथ लोकजीवन में लोकप्रिय सन्तों, भक्तों तथा विशिष्ट सत्पुरुषों का चित्रमय बखान भी जुड़ गया। इसके साथ ही दान देने वाले ठिकानेदारों, रइसों, श्रेष्ठीजनों के भी नामांकन इसमें प्रमुखता पाते रहे। कारण यह रहा कि वाचक कावडिया भाट की आजीविका का एकमात्र सहारा कावड़-फेरी पर ही निर्भर रहना था इसलिए उसकी दृष्टि में दानदाता ही सर्वोपरि महत्त्वूपर्ण रहे। जब-जब भी वह उस गांव में और उन घरों में कावड़-फेरी देता तो बड़े ही मधुर लयकारी लहजे द्वारा उनके नाम का उल्लेख कर उनके प्रतीक-चित्र बता उन्हें प्रसन्न करता और अधिक दक्षिणा प्राप्त करता।

आजादी के पहले देश के विभिन्न अंचलों में ऐसे अनुरंजनों की अनेक धारायें प्रचलित थीं किन्तु आजादी के बाद विकास के

नाम पर धीरे-धीरे इन परम्पराशील कला-विधाओं का ह्रास होने लगा। सरकार ने भी विकास के नाम पर परामपरानिष्ठ जो मनोरंजन तथा जीवन-दर्शन के जो रूप प्रचलित थे उन्हें बन्द करने का ही भगीरथ प्रयत्न किया। इसका असर यहां तक हुआ कि जिन जातियों में ये रूप प्रचलित थे उनके समक्ष आजीविकोपार्जन का संकट पैदा हो गया। आधुनिक बनने की होड़ में युवकों में भी अपनी परम्पराओं से मुक्त होने की बन आई। स्थानीय पंचायतों ने भी इन्हें जड़-मूल से बन्द करने का निर्णय लिया। साथ ही सरपंचों ने मिलकर इस तरह के पेम्फलेट भी जारी किये जिनमें लिखा कि जो भी व्यक्ति इनका प्रदर्शन करता पाया जायेगा वह सजा का भागीदार होगा और उसे जाति से बहिष्कृत तक किया जा सकेगा।

इस प्रकार राजस्थान में पड़-वाचन, कावड़-वाचन, भवई-प्रदर्शन, कठपुतली-खेल, रावलों के ख्याल, बहुरूपियों के स्वांग तथा नटों, कालबेलियों, मदारियों जैसी घुमक्कड़ जातियों के कला-करिश्में भी देखते-देखते ओझल हो गए।

संदर्भ सूत्र :

(1) कावड़, डॉ. महेन्द्र भानावत, भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर, 1975

(2) वही, पृ. 7-8

(3) सभी कावड़ चित्र डॉ. महेन्द्र भानावत के संग्रह के हैं। ये चित्र बसी गांव के खैरादी मांगीलाल मिस्त्री द्वारा उन्होंने सन् 1959 के दौरान अपनी खोजयात्रा में तैयार करवाये।

चित्र नं. 1 बस्सी निवासी काष्ठकला निर्माता मांगीलाल मिस्त्री।

चित्र नं. 2 से 18 तक कावड़ चित्र।

संपर्क- 16, वृंदावन धाम गली नं. 2,
न्यू भूपालपुरा, उदयपुर-313001, मो. 09460352480

■

कावड़ चित्र वीथि

इस कावड को धुप देकर
खुला वो धुप दे कर खुला
वे जो सवरग मे जाता है
सच मानो जुट मत मानो
सच मानो मानो जुट मत
मानो जो इस कावड को नास
ती करे जो नरक मे जाता
है आदी कावड खुला वे तो

कावड़ चित्र वीथि

कावड़ चित्र वीथि

कावड़ चित्र वीथि

संस्था आयोजन

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाजसेवा समिति भोपाल (म.प्र.) का प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन
सहयोग : संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन

संस्कृति-पर्व - 6

पारंपरिक जनजातीय कलाओं में समय के साक्ष्य विषय पर केन्द्रित उत्सव सम्पन्न

भोपाल की प्रतिष्ठित संस्था ''कला समय'' द्वारा दिनाँक 21 जुलाई 2023 को राज्य संग्रहालय सभागार श्यामला हिल्स में मध्यप्रदेश शासन संस्कृति संचालनालय के सहयोग से इस एक दिवसीय आयोजन जो 'पारंपरिक जनजातीय कलाओं में समय के साक्ष्य विषय पर केन्द्रित उत्सव में सुबह 10:30 बजे ''रूपायन'' चित्र प्रदर्शनी का शुभारंभ हुआ। मुख्य अतिथि वरिष्ठ चित्रकार एवं कथाकार श्री मनोहर काजल (दमोह) जनजातीय कलाकार आनंद कुमार श्याम, ओम प्रकाश धुर्वे, पंचम सिंह टेकाम, अनिल टेकाम, सुश्री बालमती टेकाम, सुश्री राजकुमारी मरावी के पारंपरिक चित्रों तथा श्री मनोहर काजल के जनजातीय पृष्ठभूमि के रेखांकनों और प्रख्यात पुराविद् डॉ. नारायण व्यास द्वारा संकलित शैलचित्रों के प्रतिबिंब प्रदर्शित किये गये। सुबह के सत्र में ''शैलाश्रयों से कैनवास तक जनजातीय चित्रांकन-परंपरा विषय पर विर्मश सत्र (संगोष्ठी) में डॉ. नारायण व्यास, प्रख्यात पुराविद, अध्येता-लेखक और चित्रकार भोपाल की अध्यक्षता में प्रमुख वक्ता श्री आनंद कुमार श्याम पारंपरिक गोण्डी शैली के वरिष्ठ चित्रकार भोपाल, सुश्री राजकुमारी मरावी पारंपरिक गोण्डी शैली की चित्रकार डिण्डोरी, श्री मनोहर काजल वरिष्ठ चित्रकार और कलाकार दमोह, श्री राजेन्द्र नागदेव वरिष्ठ चित्रकार भोपाल ने अपने वक्तव्य दिये।

दोपहर के सत्र 3 बजे के विमर्श सत्र की अध्यक्षता श्री कैलाशचन्द घनश्याम पाण्डेय (वरिष्ठ इतिहासविद् और अध्येता-लेखक) मंदसौर सहित प्रमुख वक्ता श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि (वरिष्ठ कवि-कथाकार और जनजातीय संस्कृति के अध्येता-लेखक भोपाल), सुश्री अन्ना माधुरी तिर्की (सुपरिचित कवयित्री और जनजातीय मौखिक परंपरा की अध्येता लेखिका) भोपाल, सुश्री शोभा घारे (वरिष्ठ चित्रकार), श्री वसंत निरगुणे (वरिष्ठ जनजातीय लेखक-अध्येता ने जनजातीय) मौखिक परंपरा में समय के बिंब विषय पर अपने विचार रखें।

शाम 6 बजे के सत्र में लोकार्पण और सम्मान समारोह में सारस्वत अतिथि श्री प्रभुदयाल मिश्र (अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम् एवं प्रधान संपादक मानस भारती पत्रिका और वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध प्रतिष्ठित अध्येता लेखक भोपाल) द्वारा प्रो. रमेश दवे प्रख्यात साहित्यकार और शिक्षाविद् भोपाल को कला समय शब्द शिखर सम्मान, डॉ. शम्भूदयाल गुरु (प्रख्यात इतिहास मध्यप्रदेश इतिहास परिषद् के संस्थापक सदस्य और अध्येता लेखक) भोपाल को कला समय राष्ट्र-आराधना सम्मान, श्री मनोहर काजल (वरिष्ठ चित्रकार, छायाकार और कथाकार) दमोह को कला समय प्रतिबिम्ब शिखर सम्मान, पं. प्रकाश पाठक (ग्वालियर घराने के प्रतिष्ठित शास्त्रीय गायक) विदिशा को कला समय संगीत-शिखर सम्मान, श्रीमती ज्योति दुबे (प्रतिष्ठित रंग-साधिका नाट्य निर्देशक और सिने अभिनेत्री) भोपाल को कला समय युवा-रंग शिखर सम्मान से श्री मिश्र द्वारा सभी को सम्मानित किया गया।

रात्रि 7 बजे से जनजातीय राग-वैभव के अंतर्गत सुश्री माधुरी तिर्की के द्वारा पारंपरिक गीतों की प्रस्तुति में उरांव जनजाति के पारंपरिक गीतों में उन्होंने खुशी तरुन ऐम्हैं जिया निंदीरका खांडलेके निंदी... उरांव गीतों में कालाय से कालाय बहिन भैया सी खेक्खन... गीत गाकर भाई बहिन के अटूट प्रेम को प्रस्तुत किया इसके बाद राजकुमारी मरावी ने गोंड जनजाति पर आधारित पारंपरिक गीतों में हाय सोनूकुटिया है, चल चली बागान जहाँ रूपया है... उसके बाद उमड़ी रहे चारों कूट गड़ी बादल... गाकर उमड़ते-घुमड़ते बादलों की याद दिलाई साथ ही वहींतरी हरी न मोरी न मोर सुहाना.... की प्रस्तुति दी। इसके बाद पं. प्रकाश पाठक के शास्त्रीय गायन में उन्होंने छोटा ख्याल, बड़ा ख्याल और तराना के रूप में सुर-ताल और लय की जुगलबन्दी का प्रदर्शन किया। तबले पर मनोज पाटिदार तथा हारमोनियम पर जीतेन्द्र शर्मा ने संगत दी। झमाझम बारीश और प्रस्तुतियों का आनंद उल्लेखनीय रहा। कला समय संस्कृति शिक्षा और समाजसेवा समिति विगत 11 वर्षों से साहित्य और कलाओं पर केन्द्रित गतिविधियों में सक्रिय हैं। इस अवसर पर कला समय का प्रकाशन, थमे नहीं चरण का लोकार्पण लेखक कवि, पूर्व सम्पादक श्री मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश' की उपस्थिति में लोकार्पण हुआ। गीतेश जी ने सग्रंह से अपनी रचनाओं का पाठ भी किया। कला समय पत्रिका का ताजा अंक ''आचार्य शंकर प्रकटोत्सव ''एकात्मक पर्व'' विशेषांक का लोकार्पण भी सम्पन्न हुआ। संस्था के अध्यक्ष पं. सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' और संस्थापक सचिव भँवरलाल श्रीवास ने सभी उपस्थित अतिथियों, श्रोताओं का हृदय से आभार माना तथा आयोजन का संचालन सुश्री कौशिका सक्सेना ने किया। आयोजन में सभी ने जमकर कार्यक्रम की सराहना की।

रपट- भँवरलाल श्रीवास

संस्कृति पर्व- 6 छाया वीथि

संस्कृति पर्व- 6 छाया वीथि

कला समय प्रकाशन

कला समय का
गौरवपूर्ण प्रकाशन

कला समय प्रकाशन की तीसरी प्रकाशित कृति है
'छोटे मुँह छोटी सी बात'

इसी पुस्तक से - शुभ को तो सभी अंगीकार करते हैं पर अशुभ कहाँ जाये; सौन्दर्य को तो सभी स्वीकार करते हैं मगर असौन्दर्य कहाँ जाये; अमृत की चाहत तो सभी को है पर हलाहल को कौन अपनाये ? तिरस्कृत को पुरस्कृत करने वाले, जिनसे सबको गिला है उन्हें गले लगाने वाले, दूषण को भूषण बनाने वाले महादेव शंकर हमारे आध्यात्मिक ही नहीं सांस्कृतिक देव भी हैं। इसलिए भारत का आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक उत्थान और उत्कर्ष शंकर जी, शंकराचार्य जी तथा आराधक शंकर दयाल जी के आदर्शों को आत्मसात करने में ही निहित है।

लेखक : संतोष तिवारी

0755-2562294, 9425678058 kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

कवि निकोनार पार्रा की कविताएं

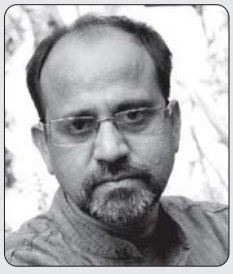

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रति: शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

भाषान्तर में इस बार स्पैनिश भाषा के विश्व विख्यात कवि निकोनार पार्रा की कविताएं।

रेखांकन - मनोहर काजल

विदा से पहले

अपनी विदा से पहले
कम से कम मेरी अंतिम इच्छा तो
पूरी होनी चाहिए :
सहृदय पाठक
इस किताब को जला दो ,
इसमें वह बिलकुल भी नहीं
जो मैं कहना चाहता था
हांलाकि यह रक्त से लिखी गई थी
पर इसमें वह नहीं है जो मैं
कहना चाहता था।

मेरे प्रारब्ध से ज्यादा उदास
कुछ भी नहीं हो सकता
मैं अपनी ही छाया से पराजित हुआ था :
मेरे शब्दों ने मुझसे बदला लिया।
मुझे क्षमा करें, मेरे अच्छे पाठक
कि मैं तुम्हे गर्मजोशी के साथ नहीं छोड़ पा रहा
मैं तुम्हे छोड़ता हूँ
एक कृतिम और उदास मुस्कान के साथ।

शायद मैं ऐसा ही हूँ
पर मेरे अंतिम शब्दों पर ध्यान दो
मैं वो सब कुछ वापिस लेता हूँ
जो मैंने कहा।

इस संसार में पूरी कड़वाहट के साथ
मैं वो सब कुछ वापिस लेता हूँ
जो मैंने कहा।

आख़िरी जाम

हमें पसंद हो या नहीं
हमारे पास बस तीन विकल्प हैं
कल, आज और कल
और तीन भी नहीं
क्योंकि जैसा कि किसी दार्शनिक ने कहा है
कल तो कल है
यह बस हमारी स्मृति का हिस्सा है :
एक टूटे हुए गुलाब से
और पंखुड़ियाँ नहीं तोड़ी जा सकतीं।
अब इस खेल में
बस दो पत्ते बचते हैं :
वर्तमान और भविष्य।

और दो भी कहाँ बचे
क्योंकि यह तो एक सार्वजनिक तथ्य है
वर्तमान अस्तित्व में नहीं है
सिवा इसके कि धीरे धीरे इसके सिरे
गायब हो रहे हैं....
यौवन की तरह।

और अंत में
हमारे पास बस कल बचता है।
मैं अपना जाम उठाता हूँ
उस दिन के लिए जिसे कभी नहीं आना।
बस यही कुछ हमारे हाथ में है
जो किया जा सकता है।

■

गीत

अशोक कुमार 'नीरद' के गीत

अशोक कुमार 'नीरद'

जन्म : 21 नवम्बर, 1945, बुरहानपुर(मध्यप्रदेश)
शिक्षा : सागर विश्वविद्यालय से विज्ञान-स्नातक
प्रकाशन : गज़ल संग्रह 'जुगनू को सूरज का भ्रम है' (2008), 'ग़ज़ल के स्वर' (2012) एवं 'दीवारों के जाल' (2022) एवं एक गीत संग्रह 'विश्वास का सवेरा' (2012) प्रकाशित।
सम्पर्क: बिल्डींग नं.8, फ्लैट नं. 301, वसंत ओएसिस, पेटुनिया, मकवाना रोड, मरोल, अँधेरी (पूर्व), मुंबई 400059, महाराष्ट्र
मो.: 9930250921

रेखांकन - मनोहर काजल

दूर घृणा के चंबल से

नहीं हमारे नाते अवसर से या किस्मत के छल से।
हमने अपनी दुनिया सिरजी केवल श्रम के संबल से।

संयम के व्यंजन के जैसा कोई भी पकवान नहीं।
शोषक छतनारी वृक्षों से अपनी कुछ पहचान नहीं।

समझौता हम से न हुआ धनवाले कोई काजल से।
हमने अपनी दुनिया सिरजी केवल श्रम के संबल से।

सूरज अंगारे उगले या क्रोधित हो आँधी-पानी,
हर हलात में तनकर चलते हम ज़िंदादिल अभिमानी।

अंगारों पर चलने वाले कब डरते हैं मरुथल से।
हमने अपनी दुनिया सिरजी केवल श्रम के संबल से।

जग तराशता जब सपने तब हम तराशतें चट्टाने।
ज्ञानी गढ़ते परिभाषा हम जीवन गढ़ते दीवाने।

प्यार हमारा मज़हब रहते दूर घृणा के चंबल से।
हमने अपनी दुनिया सिरजी केवल श्रम के संबल से।

घर से चले गये

बड़ी सफ़ाई से अपनों से छले गये हैं।
घर में दिखते लेकिन घर से चले गये हैं।

वधिकों के यश गाते-गाते थके बहुत हम।
खुद को दोहराते-दोहराते थके बहुत हम।

मित्रों की माया में कटते गले गये हैं।
घर में दिखते लेकिन घर से चले गये हैं।

पथदर्शक के दिखलाये पथ पर चल-चल कर,
चढ़ने की कोशिश में पड़े हुए ढल-ढल कर।

शव फैले हैं जिस पथ पर मनचले गये हैं।
घर में दिखते लेकिन घर से चले गये हैं।

क्षितिज-क्षितिज पर अनचाहा ही उदित हो रहा।
होने को हर ओर अहित ही अहित हो रहा।

जब भी झले कलह को पंखे झले गये हैं।
घर में दिखते लेकिन घर से चले गये हैं।

मुजरा करे रिझाने तम को किरण अभागन।
दृश्य देखकर मौन हृदय का है हीरामन।

भूख हरी है, लोग चाँद पर भले गये हैं।
घर में दिखते लेकिन घर से चले गये हैं।

■

कविता

संतोष तिवारी की कविताएँ

संतोष तिवारी

जन्म : 28 जून 1946, गुना
शिक्षा : बीई (ऑनर्स)
सिव्हिल इंजीनियरिंग, जबलपुर
मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ में सिंचाई परियोजनाओं के निर्माण, चालन-परिचालन, संधारण के अतिरिक्त प्रशासन अकादमी भोपाल में कार्य।
प्रकाशन :
छोटे मुँह छोटी सी बात, 2023
पता : ए/54, शाहपुरा, भोपाल (म.प्र.)
दूरभाष : 7999606530

(केदारनाथ में विप्लव)

16 जून 2013 में भीषण बाढ़ केदारनाथ में आई थी मंदिर के पीछे की शिला का रहस्य नाम पड़ा 'भीम शिला' उस चट्टान के कारण बाढ़ का पानी दो भागों में कट गया और मंदिर के दोनों ओर से बहकर नीकल गया उस वक्त मंदिर में 300 से 500 लोग शरण लिए हुए थे। लेखक ने उसी से प्रभावित होकर रचना को अंजाम दिया। – संपादक

यक्ष प्रश्न

हे (केदार) नाथ
शरणागत् क्यों हो गये
अनाथ ?
भक्तों पर रहा
बस
भस्मासुरों का हाथ
अचंभा !
दे नहीं पाये छाया
तुम्हारे हाथ
पर
छत्र जो हमने चढ़ाया
अब तक लगा है
तुमको दे रहा है छाव
नन्दी जो हमने गढ़ा था
श्रद्धावनत
अब तक खड़ा है
क्या आदमी
तुमसे बड़ा है ?

अश्रुसागर

चरणों में अर्पित
श्रद्धा
विश्वास
याचनायें
कामनायें
सकाम-निष्काम
भक्ति भावनायें
हो गई सब
भस्म,
ले गई उस भस्म को भी
बहाकर अश्रुधारा
लगने लगा है
अब समन्दर
और खारा

अभिशप्त शिव

विषपान के
अभ्यस्त हो
या
विष के प्रति आसक्त हो
या कि, फिर
अभिशप्त हो लो

अपयश का विष ही
पियो
और शेष जीवन
अभिशप्त ही जियो

प्रतिस्पर्धा

चरणों में झुके
वे शीष
जीवन की आस में
विश्वास से लिपटे हुये
वे लोग
भूले न जाने क्यों
कि तुम तो संहार के हो
देव
मुण्डमाला पहनली थी
पहनली
शमशान में रहना था
कर लिया निर्मित
स्वयं के पास
क्या सोचते हो ध्वस्त हो गया
हमारा विश्वास
न हो सका सोमनाथ में
न हो सकेगा केदारनाथ में
तुम्हारी निर्ममता पर
हमारी श्रद्धा
भारी पड़ेगी
बुद्धि हँसेगी
मगर
आस्था की गंगा
अविरल बहेगी

आभार

यह कौन आज आया ?
जब देव हो असमर्थ
या स्वयं ही
कर रहे हों अनर्थ
तब
देवदूत कहना उसे
शायद रहेगा व्यर्थ
सैनिक गणवेश में
सेवा आवेश में
बस, एक मनुज आया
मरघट में अमृतघट लाया
उखड़ी सांसो ने
आशीष गीत गाया
मुंदती आंखो में
गंगाजल छाया
जब एक मनुज आया।

■

कविता

डॉ. राजीव सक्सेना की कविताएँ

डॉ. राजीव सक्सेना

शिक्षा :
पीएचडी, डी लिट
प्रकाशन :
विभिन्न विषयों पर 25 से अधिक ग्रंथो का प्रणयन,
कविता के क्षेत्र में विशेष रूप से सक्रिय
संप्रति :
संचालक कोष एवं लेखा
भोपाल
संपर्क : डी, 102/10
शिवाजी नगर भोपाल
मो.: 9827238727

सर्वातम बोध
मैं ही हूं!

जागृत निनाद
जो तूर्य नाद
नभ शंख घोष
मुखरित प्रवाद,

ढहते विवाद,
सर्वात्म वाद
यह महाशब्द
नवतम निनाद,

मैं ही तो हूं
सब कहीं ओर,
अस्तित्व मेरा
अविच्छिन्न छोर,

वाणी मेरी
प्रस्फुटित,घोर,
जीवन स्पंदित
मृदु, अ घोर,

मैं हूं प्रकाश
परिव्याप्त ज्योति,
पावन, पावक सा
चिर विभूति,

मैं आत्म बोधि
मानस प्रभूति,
साक्षी गोपाल
विश्वानुभूति,

अव्यक्त चेतना
सा बहना,
आवृत्त राग का
बज उठना,

मिट गए द्वंद्व
सब कुछ अपना,
बस मैं ही हूं
मेरा कहना,

रेखांकन - मनोहर काजल

वर्षा
नीर-उत्सवा

पुनः प्रकल्पित
वृष्टि उत्सवा

गगन मंच पर
अनुगुंजित है
नीर मिश्र प्रिय
सृष्टि उत्सवा,

पुनः प्रकल्पित
क्षीर उत्सवा

पंचम राग
गंधमय रस की
मदिर – मदिर
अनुनाद अनुभवा,

पुनः प्रकल्पित
वारि उत्सवा

सोम रास
नैवेद्य द्रव्य की
मृदुलकान्ति सी
मधुर अर्णवा,

पुनः प्रकल्पित
सलिल उत्सवा

गीत गोविन्दम
नेह गगन मन,
धरा प्रेम की
महत लय श्रवा,

पुनः प्रकल्पित
अंबु उत्सवा

द्रवित कांति
वारिद वरणं द्युति
पुनर्नवा सी
जलम बहुश्रवा,

पुनः प्रकल्पित
उदक उत्सवा

जीवन के व्यापक
सुभाल पर
तिलक सजी
जल सिक्त उत्सवा

पुनः प्रकल्पित
नीर उत्सवा

■

ग़ज़ल

नवीन माथुर पंचोली की ग़ज़लें

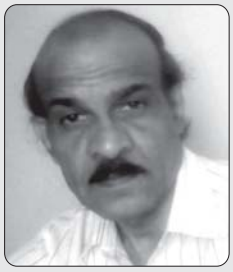

नवीन माथुर पंचोली

प्रकाशन : देश भर की विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में ग़ज़लों का नियमित प्रकाशन।
4 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित : 1. थोड़ी सी नादानी बाकी, 2. परिंदे उड़ान पर, 3. छाँह से फासला, 4. घूँट भर तिश्नगी
सम्मान : साहित्य गुंजन, शब्द प्रवाह आदि संस्थाओं के लगभग 10 सम्मान।
सम्पर्क : श्रीराम चौक, अमझेरा धार, म.प्र.-454441
मो. 9893119724

रेखांकन - मनोहर काजल

1

चलें फिर लौटकर अपनें घरों को।
परिंदे कह रहे हैं अब परों को।

तकाज़ा नींद का टूटा है जबसे,
समेटा जा रहा है बिस्तरों को।

रहें हैं साथ लेक़िन दूरियों पर,
निभाया है सभी ने दायरों को।

अगर ये इम्तिहाँ जैसा सफ़र है,
हटा दो रास्तों से रहबरों को।

शिक़ायत वक़्त से कब तक रखेंगे,
भुलाया है कि जिसने अवसरों को।

निकाले काम के बदले चुकाकर,
बिगाड़ा है सभी ने दफ़्तरों को।

पते की बात भी दम तोड़ देगी,
सुनाई जाएगी जब मसखरों को।

2

आसाँ और सफ़र रहता है।
साथ अगर रहबर रहता है।

हर कोई है आगे हमसे,
शक ऐसा अक़्सर रहता है।

अंजानो के साथ चलो गर,
पहचानों का डर रहता है।

बाहर अक़्सर दिख जाता है,
मसला जो अंदर रहता है।

जीत उसी के आती हिस्से,
जो सबसे बेहतर रहता है।

ढ़लता है हर शाम के आगे,
सूरज जो दिनभर रहता है।

नींद वहाँ तन सहलाती है,
नर्म जहाँ बिस्तर रहता है।

3

क्यों हमको ऐसा लगता है।
हममें भी कुछ तो अच्छा है।

जितना अब तक कर पाये हैं,
पहले से सोचा-समझा है।

बाहर को तकती आँखों में,
भीतर भी रहता सपना है।

अपनाया सबने उसको ही,
जो दिल, नीयत का सच्चा है।

किसकी कितनी ज़िम्मेदारी,
यह तो आपस का मसला है।

वो ही है अक़्सर मुश्क़िल में,
जिसने दिल पर ले रक्खा है।

4

सोच को सब उड़ान दूँ कैसे।
हर किसी को ज़बान दूँ कैसे।

मैं ज़मीं से निबाह रखता हूँ,
और को आसमान दूँ कैसे।

बात जब मानता नहीं कोई,
मुफ़्त अपना बयान दूँ कैसे।

जीतकर हार मान लूँ लेक़िन,
रोज़ इक इम्तिहान दूँ कैसे।

मामला है ये उनके आपस का,
बीच पड़कर निदान दूँ कैसे।

तीर जिनके नहीं निशाने पर,
हाथ उनके कमान दूँ कैसे।

■

आलेख

क्या पुराण कथाओं के पात्र पशु-पक्षी थे ?

- डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

पुराण कथाओं के पशु-पक्षी सामान्य पशुपक्षी नहीं है, वहाँ उनका अर्थ कुछ गहरा है, जिसे हम गणगोत्र के सूत्र से समझ सकते हैं। टोटम का इतिहास मानवीय धारणाओं, देवताओं और जन जातियों की युगगात्रा और सामाजिक विकास की आत्मकथा है, जिसको हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, वह वास्तव में समुद्र की भांति है, जिसमें संस्कृतियों की अनेक धाराएँ समायी हुई है।

रांगेयराघव ने ''महायात्रा गाथा'' में टिप्पणी की है कि भारतीय पौराणिक-जीवन की अनेक समस्याएं प्राचीन जातियों के'' टोटम'' में ही छिपी हुई हैं। आचार्य क्षितिमोहनसेन और डा, रामविलासशर्मा ने भी टोटम या गणगोत्र के सिद्धान्त के प्रकाश में पुराकथाओं की समीक्षा की है। एक युग था, तब वर्ण नहीं था, जाति नहीं थी, कबीले थे। किसी का गणगोत्र [totem] नाग था, कोई सुपर्ण था,कोई जटायु था, मत्स्य,कूर्म, गज, सिंह, महिष, मयूर, अश्व, हंस, शुक, काक, नंदी, वाराह आदि हजारों गणगोत्र [totem] थे।

एक दिन फेसबुक पर मैंने गणगोत्र पर लिखा तो फेसबुक पर ही मेरे एक मित्र गंगा महतो ने बतलाया था कि हमारे कुड़मी में टोटल 81 टोटेम (गणगोत्र) हैं। जिसमें सभी पशु पक्षियों और पेड़ पौधों से ही सम्बंधित है। मेरा टोटेम ''कटियार'' है । जिसका अर्थ होता है''रेशम का कीड़ा''. हनुमान जी सुग्रीव बाली ये सब झारखंड से सम्बन्ध रखने वाले हैं इनका टोटेम ''बन्दर'' था। और ये अपने कबीले की पहचान के लिए बन्दर का मुकुट या मुखौटा धारण करते थे। जैसा कि काड़ा भैंसा वाले काड़ा का मुकुट धारण किये हुए मिल जाते हैं और नाग टोटेम वाला नाग का मुकुट धारण किये। हमारे टोटेम चिह्न पहले शरीर में गुदवाए जाते थे, ताकि कबीले की पहचान हो सके।

रांगेयराघव ने लिखा है कि भय भूख और आवश्यकता ने टोटम को जन्म दिया। उन्होंने लिखा है कि संसार में एक लंबा समय टोटम का रहा है। केवल भारत में ही नहीं, मिस्र में थोट देवता गरुडमुखी है, चीन में ड्रेगन की कथाएं हैं। बैबीलोनिया में जू गरुड देवता है। भारतीय पुराकथाओं में जनमेजय का नागयज्ञ, गज-ग्राह युद्ध और नाग-गरुड-युद्ध प्रसिद्ध हैं।

युगांत प्रलय के समय मत्स्य [विष्णु के प्रथम अवतार) का प्रादुर्भाव हुआ। यह नौका पर बैठे मनु की कथा है, मत्स्य पुराण भी है। मत्स्यकन्या की कथा में मल्लाहों ने मछली का पेट चीर कर एक कन्या और बालक को निकाला था। वह उपरिचर वसु का वीर्य था। पुराण की कथा है कि अमृत प्राप्त करने के लिए देवता और दैत्य समुद्र मंथन करने लगे उस समय भगवान विष्णु ने कछुआ [कच्छप या कूर्म अवतार] का रूप धारण किया। समुद्र में प्रवेश करके मंदराचल को पीठ पर धारण किया। कुर्मी नाम का एक जनसमूह अभी भी है। इसका संबंध कूर्म गणगोत्र से है। वाराह पुराण की कथा के अनुसार जब हिरण्याक्ष धरती की चटाई कर के पाताल ले गया, तो वाराह भगवान ने हिरण्याक्ष का वध किया और अपने एक ही दंष्ट्र पर धारण करके पृथ्वी का उद्धार किया और उसे शेषनाग के फण पर प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार विष्णु के दस अवतारों में से प्रथम तीन अवतार मानवेतर हैं। मथुरा को आदिवाराह क्षेत्र माना जाता है। विष्णु के चौथे अवतार नृसिंह का स्वरूप अर्द्धमानुषी है अर्थात आधा शरीर मनुष्य का और आधा सिंह का। नृसिंह की तरह और भी देवता हैं, जिनका रूप अर्द्ध-मानुषी है। हयग्रीव-अवतार [चौबीस अवतारों में] है - हयग्रीव [मुख घोडा का, शरीर आदमीका] हनुमान [मुख वानर का, शरीर आदमी]। गणेश (हाथी जैसा मुँह बाकी शरीर मनुष्य जैसा), और हनुमान (मुख और पूंछ बंदर की तथा शेष शरीर मानवीय] प्रमुख है। चीन, जापान और तिब्बत में भी नागकन्या का आधा रूप सर्प का तथा आधा मनुष्य जैसा है। गरुड़ के संबंध में पुराणों में बताया गया है कि उसका मस्तक गरुड पक्षी के समान तथा शरीर और इंद्रियां मनुष्य-जैसी थी।

रामकथा का स्रोत भुशुंड काक है। योगवासिष्ठकार ने भुशुंड को अत्यन्त रूपवान और श्यामवर्ण बतलाया है । भुशुंड की गणना महामनीषियों में होती थी ! और स्वयं वसिष्ठ भुशुंड से मिलने के लिये मेरुपर्वत पर गये थे। भुशुंड के पिता चंड काक ही थे किन्तु माँ हंस गणगोत्र की थी। भागवत-कथा का स्रोत शुक है। शिव पार्वती को

मुंडमाला का रहस्य समझा रहे थे। पार्वती सो गयीं। तोता हूंकरा देने लगा। शिव ने देखा तो त्रिशूल ले कर दौडे। शुक उडा, व्यासपत्नी जंभाई ले रही थीं। शुक व्यासपत्नी के गर्भ में चला गया। शुकदेव। जब रावण सीता का अपहरण करके ले जा रहा था तो जटायु ने रावण को वेदतत्व का प्रमाण देते हुए परस्त्री हरण का निषेध किया था और जब रावण नहीं माना तो इसने रावण को घायल कर दिया। राम को सीता हरण की प्रथम सूचना जटायु से ही मिली थी. इतना ही नहीं, जटायु ने राम को बताया कि सीता का हरण ''बिंद'' मुहूर्त में हुआ है, इसलिए वह तुम्हें अवश्य प्राप्त होगी। स्पष्ट है कि वेद का प्रमाण और ज्योतिष का संदर्भ देना किसी भी पक्षी के वश की बात नहीं हो सकती। जटायु गृद्ध गणगोत्र का था।

यों तो गरुड़ पक्षी का ही नाम है, विष्णु का वाहन! लेकिन वेद और पुराकथाओं में जिस गरुड़ की कहानियाँ हैं ,, वह गणगोत्र अथवा टोटम-जाति अथवा कबीला है । रांगेयराघव ने महायात्रागाथा में एक पूरे अध्याय में नाग और गरुड़ के संघर्ष का वर्णन किया है। वेद में वह श्येन का पुत्र है। पुराकथाओं में कश्यप और विनता का पुत्र और अरुण का भाई है। गरुड़ की दो बातें ध्यान देने लायक हैं, पहली बात यह कि उसकी माँ अपनी ही सौत कद्रू की दासी है। गरुड़ उसे दासता से मुक्त करने के मिशन पर लग जाता है, उसे निषादों, गजों, कच्छपों, और अन्य कितने ही गणगोत्रों से युद्ध करना पड़ता है। वह यक्ष, गंधर्व और देवों से भी युद्ध करता है। अन्त में यह अपनी माँ को दासता से मुक्त करता है। बालखिल्य उसका अभिषेक करते हैं। दूसरी महत्त्व की बात है कि -यह स्वर्ग से अमृत लेकर आया था। बाद में नाग और गरुड़ दोनों की अन्तर्भुक्ति विष्णु में हो जाती है। तैत्तिरीय उपनिषद का तीतर गणगोत्र है।

हस्तिगण

हस्तिगण का देवता गजेंद्र या गणेश है। हस्तिनापुर के संबंध में डा. रामविलासशर्मा ने कहा था कि निश्चित ही इसका सूत्र हस्ति से जुडता है। रांगेय राघव ने भी लिखा है कि हस्तिनापुर हस्तिन ने बसाया था। एक बहुत पुरानी लोककहानी है, जिसमें गान्धारी ने सोने के हाथी की पूजा की थी किन्तु जब कुन्ती पूजन को आयी तो उसे मना कर दिया गया, तब अर्जुन ने ऐरावत को धरती पर बुलवाया। जिसे हम आकाशगंगा कहते हैं उसे इस कहानी ने ''ऐरावत हाथी की गैल'' बतलाया है। अर्जुन इस रास्ते से ऐरावत को धरती पर लेकर आया। सूत्र तो यहां हस्ति-पूजन का ही है।

यही टोटम शिव-महादेव के साथ जुडता है, जब पार्वती अपने मैल से पुतला बना कर उसमें प्राण संचार करके द्वार पर नियुक्त कर देती हैं, शिव आते हैं तो द्वाररक्षक गणेश शिव महादेव को रोकते हैं, शिव त्रिशूल से गर्दन काट देते हैं, पार्वती रूठती हैं, कहती हैं कि इसे पुनर्जीवित करो। उधर हाल का जनमा हस्ति मिल जाता है और शिवमहादेव हस्तिमुख जोड कर द्वारदेव को प्रतिष्ठित कर देते हैं। ध्यान रहे कि यह कहानी मिथकीय-भाषा में है, इसका अभिप्राय अभिधा से नहीं किया जा सकता।

यही गणेश शिवपार्वती की परिक्रमा करके प्रथम पूजा के अधिकारी बन जाते हैं। कोई भी कार्य विघ्नेश्वर की पूजा के बिना संपन्न नहीं किया जाता। ये विघ्नेश्वर कैसे बने, इसे लेकर जनपदों में भिन्न-भिन्न कहानियां हैं। गणेश को लेकर अपने लोकायत नाम के ग्रन्थ में डी पी चट्टोपाध्याय ने एक अध्याय लिखा है। मूषक भी एक गण था। उसे लेकर भी लोक में कहानियां हैं। दीपावली पर गणेश के साथ विष्णुपत्नी लक्ष्मी की उपस्थिति का कारण लक्ष्मी के साथ जुड़े गज तत्व में देखा जा सकता है इसी के साथ हस्तिगण और मूषक जनजाति की अंतर्भुक्ति गणेश के वाहन के रुप में प्रत्यक्ष होती है। हस्तिगण के विश्वास के अनुसार धरती को दिशाओं के अधिपति दिग्गज धारण किये हैं।

वानर गोत्रीय : हनुमान

वाल्मीकि रामायण के अनुसार हनुमान संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाएं जानते थे। हनुमान से पहले वार्तालाप में ही राम जान लेते हैं कि हनुमान चारों वेदों का ज्ञाता है। ''अशोक वाटिका'' में सीता से भेंट करते समय हनुमान सोचते हैं कि मैं कौन-सी भाषा में बात करूं

''यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्। रावणं मन्यमानां तो सीता भीता भविष्यति। क्या भाषाओं पर ऐसा अधिकार किसी कपि, मर्कट या बंदर का हो सकता है? इसीलिए डॉ. कामिल बुल्के ने स्पष्ट बताया था कि हनुमान वास्तव में वानरगोत्रीय आदिवासी थे। इसी प्रकार जिस ऋक्षराज जांबवान से कृष्ण का अट्ठाईस दिनों तक युद्ध चला था और जिसकी कन्या जांबवती कृष्ण की आठ पटरानियों में से एक थी, वह रीछ नहीं हो सकता। महिष भी गणगोत्र है । महिकासुर ब्रज में भी लोकदेवता है। महिषासुर के जन्म की कथा में उल्लेख है कि रंभासुर ने महिषी को गर्भ प्रदान किया था।

नागसभ्यता बहुत व्यापक है। नाग शक्तिशाली थे।। परीक्षित को नाग ने मारा था। कृष्ण ने कालिय को यमुना से दूर भगाया था। नागों ने नगर बसाये थे। तक्षशिला। नागलोक। नाग रसायन के जानकार थे। अमृत। नागों की अन्य जातियों से अंतर्भुक्ति हुई। तब

नागदेव तत्व का सूत्र व्यापक हुआ। शिव के साथ नाग, विष्णु के साथ नाग[शैया] बलराम शेषनाग के अवतार हैं। गूगापीर। उलूपी नागकन्या अर्जुन को व्याही थी। पार्श्वनाथ। यह नाग-गाथा लंबी है। नाग, पुराण कथाओं मे दूर-दूर तक फैला हुआ है। नाग-संस्कृति में धरती को शेषनाग के फण पर प्रतिष्ठित होने का विश्वास है। मंडूकों (मेंढकों) का राजा आयु था और उसकी कन्या सुशोभना से परीक्षित का विवाह हुआ था। जब सुशोभना परीक्षित को छोड़कर चली गयी तो परीक्षित ने मंडूक वध-सत्र किया, जिससे घबराकर मंडूकराज सुशोभना को लेकर शरण में आ गया, स्पष्ट है कि मंडूक शब्द यहाँ गणगोत्र वाचक है। मांडूक्योपनिषद है।

कपिध्वज, मूषकध्वज, मकरध्वज के उल्लेख मिलते हैं। पुराण कथाओं के पशु-पक्षी पात्रों का एक तीसरा रूप देवता के वाहन रूप में है जैसे ऐरावत हाथी (इंद्र का वाहन), गरुड़ (विष्णु), सिंह (दुर्गा), हंस (ब्रह्म तथा सरस्वती), बैल (शिव), कुत्ता (भैरव), मूषक (गणेश), मयूर (कार्तिकेय स्वामी), महिष (यमराज तथा शनि), उल्लू (लक्ष्मी का वाहन)। देवताओं के वाहनों से जुड़े अभिप्राय वास्तव में गणगोत्र जातियों की अन्तर्भुक्ति की कथाएं हैं। नरक चतुर्दशी को यमराज का तर्पण करके दीप जलाकर कुत्ते की पूजा की जाती है। भागवत में पंचम स्कंध में, कंक गिद्ध बगुला और बटेर जैसे देवताओं का उल्लेख है, भागवत 5-14-29।

भारत के लोकजीवन के विश्वबोध में, आचार-प्रणाली और विश्वासप्रणाली में गणगोत्र तत्त्व समाया हुआ है। भारत के जनगण को और भारत की लोकसंस्कृति को समझने के लिए गणगोत्र को समझना अनिवार्य है, नहीं तो अध्ययन के निष्कर्ष गलत ही निकलेंगे।

- संपर्क- 1828 हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सेक्टर- 13-12
पानीपत- 132203(हरियाणा), मो.- 9996007186

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

आलेख

असाढ़ में बरखा की बाट जोहते किसान

डॉ. प्रकाश पतंगीवार

नवतपा के बाद मौसम में अचानक परिवर्तन होता दिखाई देता है । आंधी-तूफान और गर्जना के साथ बरसात का आगमन हो जाता है। धरती की तपन शांत होने लगती है। जड़-चेतन में नवजीवन में नवजीवन का स ंचार होने लगता है। कुंओं का जलस्तर बढ़ने लगता है। कुए तालाब और नदी नालों से निकलकर किनारों की ओर भागने लगते हैं। चीटियां अपने सफेद-सफेद अंडों को मुंह में दबाए अपना स्थान बदलती हैं। धूप और गरमी के मार से बचने के लिए धरती के अंदर निवास करने वाले जीव-जंतु धरती के बाहर स्वच्छंद विचरण करने लगते हैं। बत्तर कीरा भी अपना संदेश देना नहीं छोड़ता कि अब बरसात आ गयी है चलो किसान अपने खेतों में नागर और बैलों को तैयार करके और अपने लक्ष्य को पूरा करो। इसलिए बत्तर को देखकर बांवत करने अपने खेतों की ओर किसान तत्काल निकल पड़ते हैं। बादल का घुमड़ना, प्रकृति की गोद में हल जोतता किसान, पेड़-पौधों का सुमधुर हवा के झोंकों से हिलना डुलना, बच्चों का गिरते पानी में मजा लेना यह सारे अवसर हमारे साल भर के थकान को मिटाने केलिए काफी होते हैं।

माटी हा नहावत हावे सुघ्घर
गिरत हे सरग ले पानी।
घर दुवारी अंगना बारी
फिजगे खपरा छानी।
जेठ असाढ़ के महीना मा
सबला भावे जिनगानी।
नांगर बईला धरके निकलें
गांवें मा होवय किसानी।
चारो कोती होगे हरियर
सबके भाग हा लहरही।
अन्न धन ले कोठी भरही
अंधियारी ले अंजोरी बगरही।

वर्षा को देख प्रफुल्लित होता मन -

छत्तीसगढ़ के किसानों के चेहरों पर प्रसन्नता की लहर दिखाई पड़ती हैं। यही तो है अषाढ़ या आषाढ़ महीना-जो कि आस, विश्वास और संभानाओं का संदेश लेकर आता है। यह वह समय होता है जो क्षण-क्षण बादलों की ओर अनायास ही निहारने लगता है। वर्षा होने की स्थिति में वह झूमने लगता है। कवि नारायण लाल परमार ने सच ही कहा है-

अबक तबक लागय दुनिया
तरसय गरू-गाय रे।
अब तो पावन जुड़ भइगे
जय-जय होय असाढ़ तोर
नइते हाय-हाय रे।।

सचमुच बार-बार बादल की गर्जना सुनकर और बिजली की कड़क सुनकर तो छाती की धड़कन बढ़ जाती है। शंका होनें लगती है कि कहीं पानी ज्यादा न गिर जाय। क्योंकि अभी तो खपरों की छवाई नहीं हुई है। नागर-जोता तैयार नहीं हुए है। किसान ने बरखा से बचने के लिए कमरा-खुमरी नहीं खरीदे हैं। इसीलिए वह कि कर्त्तव्यविमूढ़ क्षण में परछी तो क्षण में भीतर चहल कदमी कर रहा है। लो, देखो बड़े-बड़े बूंदों वाली बरसात शुरू हो गई। किसान यह सोचकर निश्चिंत है कि चलो, मेंड़ बांधने और गोबर-खातू डालने

का काम तो हो गया है। सचमुच असाढ़ का पानी आया तो किसान का भाग्य जाग गया। धरती का 'जिवरा' हरा-भरा हो गया और अब किसान धान बोने निकल पड़ा -

नागर - बइला संग धरके
निकले धरती पुजारी साज के।।

असाढ़ का वास्तव में कितना महत्व है। असाढ़ आते ही 'बरखा' के आंकलन की चर्चाएं होने लगती है । पता नहीं-पानी गिरेगा की नहीं। यदि किसान असाढ़ की बुवाई में पिछड़ गया, तो समझो चूक गया। फसल प्रभावित होगी। उत्पादन पिछड़ जाएगा।

तभी तो कहा है -

डार के चूके बेंदरा
असाढ़ के चूके किसान।।

दूबर को दो असाढ़ कहकर असाढ़ को बदनाम किया जाता है। ऐसा बुरा नहीं है असाढ़। असाढ़ तो श्रम की पूजा का मास है। यह मास आते ही किसान क्रियाशील हो जाते हैं। मिट्टी के घरों के लिए झिपारिया बांधना, खपरे छवाना, गोबर-खातू ढुलाना, कांद कोड़ना, मेंड़ बनाना औ र कृषि उपयोगी औजारों को सजाना और संवारना जैसे असंख्य कार्यों को अंजाम देना होता है । असाढ़ सुस्त गाँवों को जागृत होने का संदेश देता है। नए जमाने में अब इधर नागर-बैला द्वारा बोआई की परंपरा भले ही खत्म होती जा रही है, परंतु सुदूर जंगलों के गरीब किसानों के लिए नांगर-बइला ही वरदान है ।

तभी तो कहा जाता है -

हो हो तो तो नांगर बइला
कमाबो तब तो देबे मोला।

धान बोने का उपयुक्त समय -

वैसे तो अक्ती लगिन को ही धान बोनी का शुभ मुहूर्त माना गया है। गाँव के माता देवालय में भोग लगे धान को ही 'बोनी' के लिए सुरक्षित रख लिया जाता है। रास-नाम बिचारकर और 'पाग' देखकर धान बोवाई का मुहूर्त कर दिया जाता है।

चल अब जाबो जोड़ी कमाबो खेती खार
मनागे घलो अब तो अक्ति तिहार।
सगा सोदर बर बिहाव ले झरगेन
गाँव गोंदर ल हमन हा किजरगेन।
बासी पेज झउंहा धर जाबो मेड़ पार
लगे हावे हमर गावें तीर मा सियार।
धर कुदारी माटी ढेला हम खनबो
डारा पाना कांटा खूंटी ला बिनबो।
बिजहा भतहा के ठौर ठिकाना लगाबो
खेत खार के चारो मुड़ा ला चतराबो।
सबो बूता ला बेरा रहात मा बहुराबो
नीहिते पाछू देखत मुड़ धर के पछताबो।

पुराने जमाने में कुछ बीजों को कपड़े की पोटली में बाँधकर अंकुरण हेतु परीक्षण कर लिया जाता था। अब तो सर्वत्र भौतिक सुख-सुविधाओं का साम्राज्य छाया हुआ है। लोक रीति और परंपराएं लुप्त होने के कगार पर हैं। ग्रामीणों के रहन-सहन में भी बदलाव आया है। कृषि संसाधनों और तरीकों में भी बदलाव आया है। जिसमें एक संस्कार हमारा चिरस्थायी है। वह है - छत्तीसगढ़ की नारियों का कंधे से कंधा मिलाकर पुरूषों के संग खेत-खार के कार्य में हाथ बंटाना। यही नहीं वे बोझा भी ढोती है। इतनी मेहनत करने पर ही उन्हें कुछ हासिल होता है -

नर-नारी कमाथैं गा
नांगर जोते ला जाथैं गा।
मुंधियार ले आथैं गा
खोंची भर ला पाथैं गा।

कहावतों पर विश्वास -

प्राचीन समय में गाँवों में सुख-सुविधाएं उपलब्ध न थी, तब किसान चिर अनुभवों और बुद्धिमानी से खेती कार्य करते थे । ऐसे समय वे कहावतों और मुहावरों पर भी विश्वास करते थे। कृषि संबंधी कहावतें तो घरों से शुरू होकर खेत-खलिहान तक पहुंच जाती थी। एक ओर किसान का मानना था कि भाग्यवान के घर भूत नांगर जोतता है लेकिन आमतौर पर किसान को बड़ी मेहनत करनी पड़ती है-

करम के नांगर,
ला भूत जोतय।
सरी दिन कमा-कमा के मरथन,
देहें ला टोर टोर रहिथन।

अनुचित या असंभव कार्य के लिए कहा जाता था-

ओरवाती के पानी,
बरेंडी मा नइ चढ़य।

खेती का कार्य मेहनत और लगन से ही पूरा हो पाता है -

दू सांझ खेती,
तीन सांझ गाय।
जऊन न देखे,
ओखरे जाय।

छत्तीसगढ़ संस्कृति संपन्न राज्य है। सभ्यता हो हम सीखते हैं और संस्कृति हमें विरासत में मिलती है। यहां का जनजीवन सरल और निष्कपट है। 21 वीं सदी के आगमन के बावजूद यहां अनोखे रीति-रिवाज और आचार-विचार आज भी कायम हैं। बरखा प्रकृति का वरदान है। प्रकृति की अनुकंपा के लिए ग्रामीण देवी-देवताओं पर श्रद्धा रखते हैं। पानी न गिरने पर धार्मिक अनुष्ठान किया जाता है। कहीं-कहीं मेढ़क-मेंढ़की का ब्याह भी रचाया जाता है।

जुडवारो देने की परंपरा -

ग्रामीण धर्मनिष्ठ तो हैं ही, लोकविश्वासों से भी ग्रस्त है। कहीं रिगनी वृक्ष की शाखाओं पर चिथड़े चढ़ाये जाते हैं, कहीं ओ गनवार देवता पर श्रद्धा रखते हैं। बेर के नीचे स्थापित 'चूरापाट' देवता की पूजा की जाती है। असाढ़ मास आते ही गाँवों में जुड़वारों देने की भी परंपरा है। कहा जाता है कि गर्मी भड़क जाती है इसीलिए देवी देवताओं को तेल-हल्दी चढ़ाकर शीतलता प्रदान की जाती है। यही जुड़वारो कहलाता है। असाढ़ की बूंदें गिरते ही बाल मन-मयूर भी नाच उठता है -

घोर घोर रानी

इत्ता-इत्ता पानी ....।।

उत्पादन वृद्धि के लिए वर्षा-गीत गाए जाते है -

आये-आये बदरा

पाके बुंदलिया

जुड़ पावय धरती

हरियर दिखै चारें कोती।

ददरिया की सजीवता और रसात्मकता स्वर, ध्वनि, लय के साथ अभिव्यक्त होती है -

नावां नांगर नावां नहना

मुंड गथना गंवागे तोर अंगना।

इस तरह लोक गीत थके-मांदे किसान में उत्साह का संचार करते हैं।

बरखा का अनुमान -

लोकजीवन में मौसम को परखने की शक्ति है। किसान अनुमान लगाता है कि चिड़िया धूल से नहाती है, तो अच्छी वर्षा होती है। संध्या समय पश्चिम आकाश लाल दिखाई दे, तो पानी के आसार होते है। कतार-बद्ध होकर पक्षी ऊंची उड़ान भरने लगे, तो समझो पानी आने ही वाला है। मस्त होकर मयूर नाचे तो वर्षा की संभावना होती है।

महीनों की लोकप्रियता -

आज से 50 साल पहले हिन्दी महीनों की लोकप्रियता इतनी अधिक थी, कि बच्चों का नामकरण ही महीनों के नाम पर कर दिया जाता था। जैसे चैत से चैतू, बैसाख से बैसाखू, जेठ से जेठू इसी प्रकार असाढ़ू, सवनूराम, भादूराम, कातिक राम, अगनूराम, पूसूराम, मघनू राम, फागूराम इत्यादि। लड़कियों के नाम चैतीबाई, फगनी बाई रख लिए जाते थे। पर समय के साथ लोग इस परंपरा का त्याग करते आ रहे हैं। असाढ़ की और भी विशेषताएं हैं। पानी गिरते ही तालाबों में खोकसी और टेंगना मछलियां कुलबुलाने लगती हैं। धान उत्पादन अच्छा हो, इसलिए धान चाऊंर दान में देना नहीं भूला जाता। जब बइला तगड़ा हो, तो किसान मन नाचने लगता है। हर किसान यह उचित समय पाकर अपने सुनहरे अवसर को खोना नहीं चाहता। इसलिए पूरी तंमयता के साथ अपने खेती के काम को पूरा करता है। इस समय वह किसी प्रकार का समझौता करना नहीं चाहता। आलस करने वालों के लिए तो कई बहाने होने हैं इसलिए आलसी यह सोच बार-बार पछताता है कि उसने फोकला धान बो दिया है - अब कैसे होय धानरे। पर असाढ़ पार होते-होते पछताने से क्या मिलेगा। इसीलिए कहा गया है -

डार के चूकें बेंदरा, असाढ़ के चूकै किसान।।

संपर्क- फ्लेट नं. 3304, शांति रेसीडेन्सी, सी ब्लॉक, आम्रपाली, लालपुर, रायपुर (छ.ग.), मो. 8889599436

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

जमाना मेरे साथ चलता जाता है

अश्विनी कुमार दुबे

शकील बदायूँनी ने ख़ुद अपनी जाती ज़िंदगी के विषय में ज़्यादा कुछ नहीं कहा। वे वर्तमान में जीने वाले व्यक्ति थे। जो बीत गई, वो बात गई। अतीत जैसा भी रहा, अच्छा-बुरा उस पर उन्होंने खुलकर बात नहीं की। उन्हें यह विश्वास था कि भविष्य अच्छा होगा। वर्तमान में जो हम बीज के रूप में बोएँगे, वही भविष्य में हमें फ़सलों के रूप में मिलेगा— उनकी ज़िंदगी का यही फ़लसफ़ा रहा, हमेशा। न उन्होंने अपने बीते हुए कल के विषय में कुछ कहा और न ही उन्हें जानने वालों, चाहने वालों ने भी उनके अतीत के विषय में ज़्यादा जानने की कोशिश की। उनका काम ही उनकी पहचान है। उनके चाहने वालों से पूछो तो उनके विषय में वे कम बता पाएँगे, परंतु उनके बहुत सारे गीत ज़रूर उन्हें कंठस्थ होंगे। रेडियो पर गीत बजते ही सबसे पहले मुँह से यह निकलता है— अरे, यह तो शकील बदायूँनी का गीत है। गीत का मुखड़ा सुनते ही शकील का नाम ज़ुबान पर आए बिना नहीं रहता। इस प्रकार शकील बदायूँनी ने अपनी पहचान अपने काम से बनाई और यह काम की आदत उन्हें सिखाई उनके अब्बा हुज़ूर जनाब जमील अहमद सोख़्ता ने।

3 अगस्त, 1916 को उत्तर प्रदेश के एक छोटे से क़स्बे बदायूँ में उनका जन्म हुआ। उत्तर प्रदेश, भारतवर्ष का संस्कृति प्रदेश है। जहाँ एक ओर गंगा और जमुना के उपजाऊ कछार हैं तो वहीं हिंदू-मुस्लिम की गंगा-जमुनी संस्कृति भी यहीं फली-फूली है। साहित्य, संस्कृति और कला के क्षेत्र में आज भी इस साझा विरासत के प्रतिमान यहाँ देखे जा सकते हैं। उत्तर भारत के जनपदीय क्षेत्रों में सदियों से लोग मिल-जुलकर रहते आए हैं। आपसी प्रेम और भाईचारा आज भी यहाँ के लोकजीवन की विशेषता है। न जाने कितने लोकगीत, भजन और कव्वालियाँ जो सदियों से यहाँ की हवाओं में गूंज रही हैं, उनके असर से भला कोई अबोध मन कैसे बचा रह सकता है।

शकील के पिता ख़ुद मौलाना ठहरे। अरबी, उर्दू और फ़ारसी के जानकार। संस्कृत और हिंदी में दिलचस्पी। उन्होंने अपने बेटे की तालीम के लिए घर पर ही एक ऐसे गुणी बुजुर्गवार को नियुक्त किया, जो उर्दू और हिंदी ज़बान दोनों के जानकार थे। यों तो शकील के बचपन का नाम ग़फ़्फ़ार अहमद था परंतु उनके वालिद साहब के दोस्त और उनके पड़ौसी हज़रत ज़्याउल साहब ने बच्चे का नामकरण किया, शकील अहमद। बाद में यही नाम चल निकला और घर पर ही उनके अब्बा और अम्मी तक उनका तारीख़ी नाम ग़फ़्फ़ार अहमद भूल गए तथा बेटे को शकील कहकर ही बुलाने लगे।

वह पढ़े-लिखे लोगों का घर था। शकील के दादा हुज़ूर स्वयं अरबी, फ़ारसी और उर्दू के दीवान पढ़ा करते। वहीं उनके पड़ोसी हज़रत जियाउल साहब का घर में बराबर आना-जाना। ये भी उर्दू, फ़ारसी के अच्छे जानकार। इस प्रकार घर में पूरी तरह पढ़ने-लिखने का माहौल। शकील को बचपन से ही किताबों से मोहब्बत। वे दिन फूलों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने के। तितलियों के पीछे भागने और खुले आकाश में परिंदों को उड़ते देखकर चमत्कृत होने के। शकील ने प्रकृति से ज़िंदगी में पढ़ना सीखा। पहले वे मदरसे में दाख़िल हुए जहाँ उन्होंने पारंपरिक रूप से उर्दू-फ़ारसी सीखी। उसके बाद वे स्कूल में आए, जहाँ उन्होंने हिंदी, अंग्रेज़ी और उर्दू की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की। अब वे शिक्षा की रोशनी में ज़माने को देखने लगे थे।

देश में अंग्रेज़ों का दमनकारी शासन तेज़ चल रहा था। एक ओर क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ तीव्र थीं, जिनमें अंग्रेज़ी शासन का खुलेआम विरोध। दमनकारी अंग्रेज़ों की हत्या। शासन के ख़ज़ाने को लूटना और बम धमाकों द्वारा अंग्रेज़ों के कानों तक अपनी आवाज़ पहुँचाना शामिल था। दूसरी ओर गांधी जी का अहिंसात्मक आंदोलन ज़ोरों पर था, जिसके अंतर्गत सत्याग्रह, असहयोग, अवज्ञा, रैली और सामूहिक विरोध प्रदर्शन की गतिविधियाँ चल रही थीं। गांधी जी अंग्रेज़ों से संघर्ष के साथ-साथ भारतीय समाज में आमूलचूल परिवर्तन चाहते थे। वे छुआछूत के ख़िलाफ़ थे। हिंदू और मुस्लिम समुदाय के लोगों को मिल-जुलकर संघर्ष करने के लिए कहते थे। गांधी जी का मानना था कि बाहर की लड़ाई जीतने के लिए सबसे पहले हमें अपने आंतरिक संघर्ष पर विजय प्राप्त करनी होगी। इसके लिए वे प्रयास भी कर रहे थे। संघर्ष में समभाव, नारी शक्ति का उत्थान, अस्पृश्यता निवारण और शिक्षा का विकास, इनके बिना वे आज़ादी के संघर्ष को अधूरा मानते थे। इसके लिए उनका कहना था कि समाज के हर आदमी को, जहाँ, जिस परिवेश में भी वह है, वहीं से उसे संघर्ष की शुरुआत करनी होगी।

कहीं न कहीं शकील के मन में गांधी जी की समन्वयवादी बातें अपना असर कर रही थीं। वे मनुष्य के संपूर्ण विकास में विश्वास व्यक्त करने लगे थे। जाति, धर्म और वर्ग भेद की बातों से दूर एक स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास शकील में हो रहा था। कॉलेज में जाते-जाते तक वे अदब की दुनिया में उपस्थिति दर्ज कराने लगे थे। बदायूँ में हाफ़िज़ सिद्दीकी इस्लामिया हायर सेकंडरी स्कूल में और अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में कॉलेजी की पढ़ाई करते हुए शकील को उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में घूमने-फिरने के अवसर ख़ूब मिले। वैसे भी उन्हें ग्रामीण जीवन बहुत रास आता था। पास-पड़ोस में कहीं किसी भी परिवार में शादी-ब्याह का अवसर हो तो शकील वहाँ ज़रूर पहुँच जाते थे। हिंदू परिवारों में महीनों तक चलने वाले विवाह उत्सव। उन उत्सवों के तरह-तरह के रीति-रिवाज। ग्राम देवताओं का पूजन। शादी के अवसर पर विभिन्न प्रकार की रस्में और इन अवसरों पर गाए जाने वाले विविध लोकगीत शकील बड़े ध्यान से सुना करते थे। बेटी की विदाई के समय गाए जाने वाले मार्मिक गीत शकील को बहुत प्रभावित करते थे। जीवन की विविधता के मार्मिक चित्र शकील को ग्रामीण जीवन में ही दिखाई दे रहे थे। ग़रीब घर है। घर के सदस्य रोज़ कमाते हैं, तब खाते हैं। आज के लिए घर में भोजन है। कल का कोई ठिकाना नहीं। परंतु उनका जीवन गीत-संगीत से भरपूर है। किसी उस्ताद ने ग्रामीणजनों को गाना-बजाना कभी नहीं सिखाया। परंतु वे स्वर में गा रहे हैं। ताल के साथ अपने लोक वाद्य बजा रहे हैं। महिलाएँ तो हर घर में ढोलक-मजीरे बजा लेती हैं। जाने किसने रचे इतने मीठे एवं जीवंत गीत। कोई नहीं जानता उन लोकगीतों के सर्जकों को। गाने वाले तो बस यही कहते हैं कि हमने तो फलाने दद्दा, बब्बा और कक्का के मुंह से सुना रहा यह गीत। महिलाएँ घर-घर में संस्कार गीत गातीं। जन्मोत्सव हो या विवाहोत्सव पूरा गाँव उमड़ आता और फूट पड़ते अनगिनत लोकगीत। शकील इन गीतों को ध्यान से सुनते। कभी-कभार उन्हें लिख भी लेते। उन्हें आश्चर्य होता कि जो बातें उन सीधे-सरल ग्रामीण गीतों में है, वे बातें तो उन्हें अदब की मोटी-मोटी किताबों में कहीं नहीं मिलीं। कितनी सहजता से, बिलकुल सरल शब्दों में जीवन के गूढ़ रहस्यों को खोलते रहते हैं ये लोकगीत। नहीं है इनमें वैसा व्याकरण और शब्दालंकार परंतु जीवन के कितने क़रीब हैं, ये गीत। आगे चलकर शकील की शायरी में ग्रामीण जीवन के ये अनुभव विस्तारपूर्वक उभरकर आए।

यों तो शकील का परिवार सुन्नरवर जमात का प्रतिष्ठित मुस्लिम परिवार था। आपके अब्बा हुज़ूर इलाक़े भर में मौलाना के रूप में मशहूर थे। वे पक्के नवाज़ी और इस्लामिक रवायतों पर उनका मुकम्मल ईमान। परिवार में दरगाह अब्दुल मुकतदिर से गहरी अक़ीदत थी। घर में इस्लाम के जानने वाले आलिम-फ़ाज़िल लोगों का आना-जाना। आए दिन घर में उनकी तक़रीरें। पड़ोस में रहने वाले हज़रत जियाउल कादरी साहब का शकील के घर में बहुत आना-जाना था। शकील भी अकसर उनके यहाँ जाया करते और घंटों उनके सान्निध्य में बैठा करते थे। जियाउल कादरी साहब बहुत खुले दिल-दिमाग़ के आदमी थे। वे ख़ुद बहुत अच्छे शायर थे और अपने समय के सभी बड़े शायरों से परिचित थे। उन्होंने ही शकील को बताया कि तुम्हारे परिवार के एक बुज़ुर्गवार ख़लीफ़ा मोहम्मद वासिल उर्दू के मशहूर शायर हो गए हैं। वे बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे। इस प्रकार शायरी का ये शौक तुम्हें यूँ ही नहीं है, यह तुम्हारे परिवार की रवायत है। शकील को यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने विधिवत् गंडा बँधाकर जियाउल कादरी साहब को अपना उस्ताद मान लिया। कादरी साहब ने जो पहली बात उनसे कही वह बहुत महत्त्वपूर्ण थी। कादरी साहब कहते, 'ख़ुदा ने बहुरंगी दुनिया बनाई है। सारे रंग और ख़ुशबुएँ उसकी हैं। इसलिए सारी कायनात का आदर करना, उसकी इबादत है।' यह बात शकील के मन में बहुत गहरे तक बैठ गई। लोकजीवन से उन्होंने ज़िंदगी की जद्दोजहद के बीच रागात्मकता के महत्त्व को जाना। ग्रामीण जीवन को देखते हुए

उन्होंने उनकी ज़िंदगी के संघर्ष को समझा। एक ओर शहरी जीवन में राजनीतिक उथल-पुथल चल रही थी। विदेशी शासन को हटाने के लिए गांधी जी के नेतृत्व में पूरी जनशक्ति एकजुट होकर संघर्ष कर रही थी। गांधी, सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ राजनीतिक परिवर्तन चाहते थे। उनकी नज़र में सर्वधर्म समभाव, अस्पृश्यता और अहिंसात्मक आंदोलन, जीवन के बड़े मूल्य थे। इन मूल्यों का शकील पर भी असर था। जीवन के प्रति अपनी समझ को वे अब अपनी शेरो-शायरी में पिरोने लगे थे। वे कुछ पंक्तियाँ लिखते और झट कादरी साहब को दिखाने पहुँच जाते। कादरी साहब इस्लाह करते। उनके शेरों को दुरुस्त करते और उन्हें ज़िंदगी की गहराई से परिचित कराते। एक दिन कादिर साहब ने शकील से कहा— 'इनसान की रचना ख़ुदा का अद्‌भुत कमाल है। एक मुकम्मल इनसान में सब कुछ है। एक बड़ा शायर उसे उसकी संपूर्णता में देखता है।' इस तरह शकील की शायरी में धीरे-धीरे आकाश खुलने लगा। अब वे किसी वाद, विचार और पंथ-मज़हब के गायक नहीं थे उन्हें तो अपनी शायरी में ज़िंदगी के फैलाव को गाना था और वे गाने लगे। ऐसे ही किन्हीं क्षणों में कादरी साहब ने शकील को अपनी ज़िंदगी का सार इन शब्दों में कह सुनाया— 'मोहब्बत भी एक करिश्मा है शकील, सिमटे तो दुनियादारी और फैले तो ख़ुदाई।' शकील ने बीज मंत्र की तरह इस वाक्य को अपने जीवन में ग्रहण किया।

इस बीच शकील की शादी हो गई। उनकी बेग़म का नाम सलमा था। शकील के पिता जमील अहमद कादरी को डायबिटीज़ की बीमारी घोषित हुई। उन्होंने अपना थोड़ा जीवन जानते हुए आनन-फानन में अपने परिचित श्री कैसर हुसैन कादरी की बेटी सलमा से शकील का निकाह तय कर दिया। इस बाबत शकील से कुछ पूछा नहीं गया। उस समय इस तरह का कोई चलन भी नहीं था। परंतु शकील को यह लगा कि इस बाबत उनके अब्बा हुज़ूर को उनसे गुफ़्तगू करनी चाहिए थी। सलमा को उन्होंने इसके पूर्व कभी देखा भी नहीं था। और उनके उस्ताद कादरी साहब भी दुनिया से रुख़सत कर गए थे। अब तक शकील के जीवन में मोहब्बत का कोई अफ़साना न था। रहा भी हो तो उसे आज तक कोई नहीं जानता। इस प्रकार शकील का निकाह सलमा से हो गया और शकील की नई ज़िंदगी की शुरुआत हुई।

कॉलेज के दिनों में ही शकील मुशायरों में अपना कलाम पढ़ने लगे थे। उन दिनों मौलाना 'एहसान' यूनिवर्सिटी में उर्दू के लेक्चरर थे। एहसान साहब से शकील की बहुत पटती थी। एहसान जो कि उर्दू के लेक्चरर होने के साथ अपनी शायरी के लिए बहुत मशहूर हो चुके थे, शकील को बहुत पसंद करते थे। उन दिनों उत्तर प्रदेश के विभिन्न कॉलेजों में शायरी के मुक़ाबले आयोजित किए जाते थे। एहसान अपने कॉलेज की ओर से हमेशा शकील और राज मुरादाबादी को अपने साथ ले जाया करते थे। ऐसे न जाने कितने मुक़ाबलों में शकील ने शील्ड जीतकर अपने कॉलेज का नाम रोशन किया। उन्हीं दिनों उनकी मुलाक़ात हिंदी के प्रसिद्ध गीतकार गोपालदास 'नीरज' से हुई। नीरज गीत, ग़ज़ल और अपनी नज़्मों के लिए जाने जाते थे। नीरज की आवाज़ एवं मंचों पर गीत-ग़ज़ल और नज़्मों को पढ़ने का उनका अंदाज़ अनूठा था। वे कवि-सम्मेलनों और मुशायरों के राजकुमार कहे जाते थे। शकील ने उनकी सोहबत में बहुत कुछ सीखा। हिंदी गीतों की रवानगी, उनका छंद-विन्यास और शैली की विशेषताएँ शकील को नीरज की संगत में रहते हुए सीखने को मिली। नीरज और शकील दोनों अच्छे मित्र रहे और एक-दूसरे की बहुत इज़्ज़त करते थे। शकील में हिंदी और उर्दू दोनों परंपराओं का अद्‌भुत संगम दिखाई देता है। एक ओर जहाँ नीरज से उनकी मित्रता थी, वहीं जिगर मुरादाबादी से भी उनके बहुत अच्छे संबंध रहे। हालाँकि बचपन से शकील उर्दू शायरी को साध रहे थे, परंतु जिगर से संबंध-संपर्क होने के बाद उनकी शायरी परवान चढ़ने लगी। कॉलेज में वे बी.ए. की पढ़ाई कर रहे थे। उसी दौरान उनके कलाम कॉलेज की सरहदें पार कर प्रदेश और देश के हिस्सों में गूँजने लगे थे। उन्हें जगह-जगह मुशायरों और कवि-सम्मेलन में बुलाया जाने लगा था। वे तरन्नुम में अपना कलाम पढ़ते हुए श्रोताओं का मन मोह लेते थे। उस समय तक अदब की दुनिया के लोग शकील का नाम भलीभाँति जानने लगे थे। शायरी के जानकार यह कहते न अघाते थे कि इस युवा शायर के कलाम में जो कशिश है, वह अन्यत्र दिखाई नहीं देती।

शकील के अब्बा हुज़ूर चाहते थे कि साहबजादे जल्द से जल्द कहीं नौकरी में लग जाएँ और अपने परिवार की परवरिश करें। इसके लिए उन्हें ज़्यादा इंतज़ार नहीं करना पड़ा। शकील अपनी पढ़ाई पूरी करने के पश्चात् बहुत जल्द ही सरकारी नौकरी में आ गए। उन्हें दिल्ली के सप्लाई एवं पूर्ति विभाग में एक स्थायी नौकरी मिल गई। वे अपने परिवार सहित दिल्ली आ गए।

दिल्ली में उन्हें पढ़ने-लिखने के पर्याप्त अवसर मिले। दिल्ली पूरे देश का केंद्र। भारत की राजधानी। विभिन्न प्रांतों के लोग यहाँ आकर बस रहे थे। अलग-अलग भाषा-भाषी लोग, विभिन्न संस्कृतियों का मेल और नई राजनीतिक चेतना से लबरेज दिल्ली

शहर उन्हें रास आने लगा। हालाँकि शकील कम बोलने वाले इनसान थे। अकसर मुँह में पान दबाए रहते। जब भी बोलते, तब वे पूरी तरह निर्णायक मुद्रा में होते, जैसे उन्होंने सत्य पा लिया हो। शकील अत्यंत मिलनसार व्यक्ति थे। दोस्त-यारों के यहाँ जाना। महफ़िल में गपशप करना। उत्सवों, त्योहारों और मेलों आदि में उत्साहपूर्वक शरीक होना। सब जगह जाते हुए, जैसे वे कुछ तलाश कर रहे होते। वे अकसर कहते, ज़िंदगी में कितना कुछ जानने को है। दिल्ली में रहते हुए उनके परिचय का दायरा बहुत बढ़ गया था। कहीं भी कोई प्रसिद्ध मुशायरा हो, शकील को ज़रूर याद किया जाता। अब तक वे अदब की दुनिया में पूरी तरह स्थापित हो चुके थे।

अपने उस्ताद हज़रत जियाउल कादरी साहब का इंतकाल फिर अपने अब्बा हुज़ूर का इंतकाल, ये दो ऐसे हादसे थे, जिनका शकील के दिलो-दिमाग पर गहरा असर हुआ। शकील गंभीर प्रकृति के आदमी थे, किसी से ज़्यादा कुछ अनावश्यक कहते न थे। मिलनसार बहुत थे, लोगों के यहाँ बहुत आना-जाना। लोगों के दुख-दर्द सुनना, उन्हें उचित मशवरा देना, उन्हें अ%छा लगता था। परंतु लाख कोई खोदे, वे अपने अफ़साने किसी के सामने खुलकर बयां न करते थे। दोस्तों की कमी न थी। स्कूल के दिनों के दोस्त, जिनसे उनका पत्र-व्यवहार था। कॉलेज के संगी-साथी अकसर दिल्ली में उनसे मिलने पहुँच जाते थे। अपने ऑफिस, सप्लाई विभाग में भी वे ख़ासे लोकप्रिय थे। स्टाफ के लोगों से भी उनका ख़ूब मिलना-जुलना था। पर दूसरों की हर तरह से मदद करना और हर किसी के घावों पर मरहम रखना ही उनका शगल रहा। उन्हें क्या चाहिए? उनके मन में भी कोई अँधेरा कोना है? यह कोई नहीं जानता था।

तन्हाई, दर्द और कशिश वाला स्वर उनकी शायरी में बार-बार उभरकर आता है। शुरू-शुरू की शायरी में वे गमे आशिकी को गा रहे थे और बाद तक ये भाव उनकी शायरी में लौट-लौटकर आते रहे। इसकी झलक उनके जीवन में कहाँ है? यह आज तक कोई नहीं जानता। अलबत्ता वे यही कहते रहते कि सबका दुख भी मेरा दुख है। ज़िंदगी बहुत लंबी नहीं रही उनकी, परंतु महत्त्वपूर्ण ज़रूर रही, जिसमें हमेशा वे सीखते ही रहे। हज़ारों लोगों से मिले जीवन में। सैकड़ों से दोस्ती-यारी रही। अनगिनत लोगों की मदद की उन्होंने। न जाने कहाँ क्या देखा, सुना या जाना, जो भीतर तक धँस गया और रिस-रिसकर दर्द के नगमों के रूप में निकलता रहा।

१९४६ में दिल्ली के एक मुशायरे में उन्होंने अपनी एक प्रसिद्ध ग़ज़ल जिसका मुखड़ा था— 'ग़मे आशिकी से कह दो रहे आम तक न पहुँचे, मुझे ख़ौफ़ है ये तोहमत मेरे नाम तक न पहुँचे।' इसे सुनकर प्रसिद्ध फ़िल्म निर्माता-निर्देशक ए.आर. कारदार बहुत प्रभावित हुए थे, इसके बाद तो शकील की लोकप्रियता बढ़ती चली गई। उर्दू अदब में अब शकील बदायूँनी का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता था। दिल्ली में रहते हुए शकील की शायरी नए परवान चढ़ रही थी। वे दिन आजादी के आंदोलन के दिन थे। अदब की दुनिया में तरक़्क़ीपसंद शायरों का दबदबा था, ये सब एक विशेष विचारधारा से प्रभावित होकर शायरी कर रहे थे और जनता में ख़ासे लोकप्रिय थे। शकील पर स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव था, देश प्रेम से संबंधित भी कुछ रचनाएँ उनकी मिलती हैं परंतु वे कभी किसी विचारधारा के प्रति पूरी तरह समर्पित नहीं हो पाए। उन्हें बार-बार अपने उस्ताद की बात याद हो आती थी। वे कहा करते थे, 'एक बड़ा शायर हमेशा इनसान को उसकी संपूर्णता में देखता है।' शकील इस बात को अपने दिल की गहराइयों तक महसूस करते थे इसलिए उन्होंने ज़िंदगी की विविधता के गीत गाए। 'इश्क़' उनकी शायरी में बुलंदियों तक पहुँचता है। लोकजीवन से वे समाज की विसंगतियों को उठाते हैं। प्रकृति से उन्हें अनन्य प्रेम है। दर्द और ग़म में डूबकर वे अत्यंत प्रभावशाली अशआर कह जाते हैं। समालोचक तो उस समय उन्हें दर्द-ए-दिल का शायर कहने लगे थे। हालाँकि वे ज़िंदगी के हर रंग और ख़ुशबुओं को अपनी शायरी में अभिव्यक्ति दे रहे थे। उन्हीं दिनों शकील ने हिंदू धर्म-दर्शन को क़रीब से देखा और जाना। भारतीय लोक परंपरा से तो वे भलीभाँति परिचित थे। उत्तर प्रदेश के जनपदीय क्षेत्रों में उनका बचपन बीता। स्कूल-कॉलेज के दिनों में वे ग्रामीण अंचलों में ख़ूब घूमे-फिरे। गाँव के खेल, मेले और विभिन्न उत्सवों में उन्होंने स्वयं भाग लिया। उसी समय उन्होंने भारतीय समाज की पर्व परंपरा को नज़दीक से देखा और जाना। दिल्ली में वे भारत की विभिन्न धार्मिक-सामाजिक परंपराओं में रच-बस गए। गांधी जी के सर्वधर्म समभाव का प्रभाव तो उन पर पहले से था। दिल्ली में उन्होंने सर्वधर्म साहित्य को पढ़ा, जाना और समझा। इस प्रकार वे एक मुकम्मल शायर के रूप में उभरने लगे। मुशायरों में अब वे अपनी बहुरंगी शायरी पढ़ रहे थे, जिससे उनकी लोकप्रियता और बढ़ी।

प्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक श्री ए.आर. कारदार ने उन्हें सुना था और उनसे प्रभावित थे। उन्हीं दिनों एक मुशायरे के सिलसिले में शकील का बंबई आना हुआ। ए.आर. कारदार उनसे मिले और बातों ही बातों में उन्होंने शकील के सामने फ़िल्मों में गीत लिखने की पेशकश की। सहसा शकील का मन असमंजस में पड़ गया। तयशुदा

स्थितियों पर शब्दकारी करना क्या उनके लिए ठीक होगा ? वे अभी इस ऊहापोह से निकल ही न पाए थे कि ए.आर. कारदार ने अगले दिन उनकी मुलाक़ात संगीतकार नौशाद से कराई। नौशाद से मिलकर शकील के सारे संदेह धराशायी हो गए। उन्हें लगा कि नौशाद तो शायरी के ख़ासे जानकार हैं। उनके साथ काम करते हुए उन्हें कभी कोई परेशानी नहीं आएगी। नौशाद ने भी पहली ही मुलाक़ात में उन्हें आश्वस्त कर दिया कि आपकी स्वतंत्रता में किसी का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। हम आपको एक खुला आसमान देना चाहते हैं, जिसमें जहाँ तक चाहें आप उड़ानें भर सकते हैं। किसी तरह की कोई बंदिश आपके आड़े नहीं आएगी। और सचमुच नौशाद ने जीवन भर शकील के साथ यह बात निभाई। इसीलिए फ़िल्मी दुनिया में शकील की नौशाद से ही सबसे ज़्यादा पटी और निभी। वे दोनों जीवन भर एक-दूसरे के अभिन्न मित्र रहे।

इस प्रकार शकील का दिल्ली से बंबई आने का रास्ता बना। वे परिवार सहित बंबई में आकर रहने लगे।

उन दिनों फ़िल्म जगत् में अलग-अलग कैंप सक्रिय थे। राजकपूर, देवानंद और दिलीपकुमार के नाम से विशेष कैंप जाने जाते थे। आगे चलकर शकील, नौशाद और मोहम्मद रफी को दिलीपकुमार कैंप के सदस्यों की पहचान मिली। यह सही है कि शकील साहब ने अपने इन्हीं साथियों के साथ ज़्यादा काम किया परंतु वे हमेशा इस प्रकार के कैंप वाली धारणा को नकारते रहे। उन्हें जहाँ से भी ऑफर मिलता, वे उत्साहपूर्वक वहाँ पूरे दिल से काम करते थे। यही वजह है कि उन्होंने रवि, हेमंतकुमार, रौशन और एस.डी. बर्मन के साथ भी काम करते हुए यादगार गीत लिखे।

नौशाद साहब के साथ उनकी केमिस्ट्री बहुत मेल खाती थी। 'दर्द' फ़िल्म के साथ उनके संग गीत-संगीत की जो यात्रा शुरू हुई, वह शकील के अंतिम दिनों तक बेलौस चलती रही। दोनों एक-दूसरे की भावनाओं को अ%छी तरह जानने-समझने लगे थे। इस जोड़ी ने अपने दौर में कई सफल फ़िल्मों में काम किया। या यह कहें कि इन लोगों के काम के कारण ही वे फ़िल्में विशेष रूप से सफल रहीं। शकील, ग़म और दर्द के गायक हैं, यह बात नौशाद अच्छी तरह जानते हैं। नौशाद से पहली मुलाक़ात में शकील ने जो पंक्तियाँ सुनाई— 'हम दर्द का अफ़साना, दुनिया को सुना देंगे। हर दिल में मोहब्बत की एक आग लगा देंगे।' इन्हें सुनकर नौशाद अत्यंत प्रभावित हुए थे और उन्हें उसी समय यह अहसास हो गया था कि जिस शायर की उन्हें मुद्दत से तलाश थी, वो आज शकील को पाकर पूरी हुई। ढेर सारी फ़िल्मों में नौशाद ने उनसे दर्द-ओ-ग़म के नायाब नग़मे लिखवाए। दर्द, नाटक, दुलारी, दिल दिया दर्द लिया और जाने कितनी फ़िल्मों में शकील की दर्द भरी शायरी उभरकर आई एवं ख़ूब लोकप्रिय हुई। करुणा, वियोग, दुख और तन्हाई के नग़मे गाने के लिए शकील पहले भी जाने जाते थे। फ़िल्म जगत् में आने के पश्चात् उनका यही भाव अपने नए अंदाज़ में उभरकर आने लगा।

नौशाद ने उन्हें एक दिन फिर याद दिलाया— 'हमने आपको खुला आसमान दिया है, शकील साहब, इसमें आपको उन्मुक्त होकर उड़ना है।' इसी संदर्भ में उन्हें अपने उस्ताद जियाउल कादरी साहब का फ़लसफ़ा भी याद हो आया कि एक बड़े शायर को ज़िंदगी के हर रंग और ख़ुशबुओं को गाना चाहिए। यहाँ से नौशाद और शकील ने नई ज़मीन पर काम करने की शुरुआत की।

शकील यह बात अच्छी तरह जानते थे कि मोहब्बत ख़ुदा का एक अद्‌भुत करिश्मा है। इस करिश्मे के लिए कितना भी कहो फिर भी सब कुछ अनकहा रह जाता है। उन्हीं दिनों के. आसिफ की महत्त्वाकांक्षी फ़िल्म 'मुग़ले आज़म' बन रही थी। इसमें नौशाद और शकील साहब को काम करने का अवसर मिला। दोनों ने इस फ़िल्म के लिए जी-तोड़ मेहनत की और एक से बढ़कर एक नग़मे दिए। शकील यहाँ खुलकर उद्‌घोष करते हैं— 'ऐ मोहब्बत ज़िंदाबाद। मंदिर में, मस्जिद में तू और तू ही है ईमानों में। मुरली की तानों में तू, तू ही है अज़ानों में। तेरे दम से दीन-धरम की दुनिया है आबाद...।'

जिस नग़मे को शकील ने रात भर लिखा उसका ज़िक्र करना भी यहाँ ज़रूरी है— 'प्यार किया तो डरना क्या ? परदा नहीं जब कोई ख़ुदा से बंदों से परदा करना क्या ?...' नौशाद साहब को शकील ने जब इस गाने के बोल सुनाए तो नौशाद गद्‌गद हो उठे। उन्होंने शकील की पेशानी चूम ली और कहा— 'वाहऽ शकील वाहऽ कितने सरल लफ़्ज़ों में, कितनी बड़ी बात कह दी शकील तुमने।' आगे चलकर यह गीत कितना लोकप्रिय हुआ बताने की ज़रूरत नहीं है।

शकील अब हुस्न और इश्क़ के नग़मे लिख रहे थे। बेमिसाल। नौशाद और ग़ुलाम मोहम्मद के साथ तो उन्होंने मोहब्बत के ढेर सारे नग़मे लिखे ही। उन्हीं दिनों संगीतकार रवि के साथ काम करने का उन्हें अवसर मिला। उन्होंने एक प्रसिद्ध गीत लिखा— 'चौदहवीं का चाँद हो, या आफ़ताब हो। जो भी हो तुम ख़ुदा की क़सम, लाजवाब हो...।' लोगों ने उनसे पूछा— 'शकील साहब, पूर्णिमा का चाँद तो और ज़्यादा ख़ूबसूरत होता है। सारे कवि-शायर तो पूर्णिमा के चाँद की तारीफ़ करते नहीं थकते। आपने फिर चौदहवीं का चाँद किस अंदाज़ में कहा ?' शकील साहब पान चबाते हुए अपने हरफनमौला अंदाज़ में बोले— 'मियाँ, पूर्णिमा के चाँद को

अब ढलना है। पूरी हो गई बात, अब उसे मिटना है। जबकि चौदहवीं का चाँद, अभी उठान पर है। उसे अभी और खिलना है। आगे बढ़ना है उसे।' शकील, इस प्रकार अपनी हाज़िर जवाबी से लोगों को कायल कर दिया करते थे।

संगीतकार रवि, हेमंतकुमार, रौशन और एस.डी. बर्मन भी उनकी क़लम का लोहा मानते थे और उनके प्रशंसकों में थे। अमूमन लोग ये मानते थे कि शकील उर्दू शायरी की परंपरा से हैं। ग़ज़ल, नज़्म, कव्वाली आदि अ%छी लिख सकते हैं और लिखते भी हैं परंतु इसके आगे कुछ नहीं। फ़िल्म निर्देशक विजय भट्ट उन दिनों 'बैजू बावरा' फ़िल्म बना रहे थे। ग्वालियर जनपदीय क्षेत्र के एक हिंदी भाषी युवक की संगीत जगत् में संघर्ष की कहानी पर आधारित यह फ़िल्म थी। इसमें कई तरह के भक्तिगीत रखे जाने थे। स्वाभाविक रूप से विजय भट्ट का चुनाव कवि प्रदीप थे। नौशाद से इस विषय पर जब उनकी चर्चा हुई तो उन्होंने कहा— 'पंडित प्रदीप बहुत अ%छे गीतकार हैं। आपने उनका नाम बहुत सोच-समझकर ही चुना है परंतु मैं चाहता हूँ कि शकील के इस विषय पर एक-दो गीत सुन लिए जाएँ। फिर जैसा आप निर्णय लें।' विजय भट्ट ने बेमन से कहा— 'आप कहते हैं तो किसी दिन शकील के साथ बैठक रख ली जाए।'

नौशाद ने फ़िल्म 'बैजू बावरा' के विषय में शकील से विस्तारपूर्वक चर्चा की। उन्होंने बताया कि इस फ़िल्म में बैजू बावरा की संगीत सम्राट तानसेन से टक्कर होती है और गाँव का बैजनाथ उर्फ़ बैजू, बावरा होकर गा उठता है, जिससे स्वयं तानसेन और बादशाह अकबर हतप्रभ रह जाते हैं। बैजू मन से बहुत सरल है। अपने गुरु स्वामी हरिदास का अनन्य भक्त है और अपनी कला को प्रभु का प्रसाद मानता है। इस अद्‌भुत व्यक्तित्व को तुम्हें अपने गीतों में ढालना है। निर्देशक विजय भट्ट उन गीतों को सुनेंगे तत्पश्चात् उस फ़िल्म में गीत लिखना तय होगा।

शकील ने इस चुनौती को हर्षपूर्वक स्वीकार किया। अब वे रात-दिन बैजू बावरा के विषय में ही सोचने लगे। कैसा रहा होगा बैजू का अंतरमन? बड़ी मेहनत और लगन से उन्होंने दो भजन लिखे— 'मन तरपत हरि दर्शन को आज...' एवं 'ओ दुनिया के रखवाले सुन दर्द भरे मेरे नाले...'

निर्धारित तिथि में निर्देशक विजय भट्ट के साथ नौशाद और शकील की बैठक हुई। उन्हें ये गीत सुनाए गए। विजय भट्ट आँख बंद करके सुनते रहे। गीत ख़त्म होने के बाद भी वे देर तक आँख बंद किए बैठे रहे। जब उन्होंने आँखें खोली तो यही कहा— 'अद्‌भुत। बैजू बावरा में शकील बदायूँनी ही गीत लिखेंगे।' इस प्रकार अपने समय की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण फ़िल्म में शकील बदायूँनी ने भक्तिरस से ओत-प्रोत बेहद लोकप्रिय भजन लिखे।

'बैजू बावरा' का संगीत तैयार करते समय नौशाद भी इस बात से अभिभूत थे कि शकील हिन्दू धर्म-दर्शन के इस तरह जानकार हैं। आगे उन्होंने शकील से कई फ़िल्मों में यादगार भक्ति गीत लिखवाए।

दिलीपकुमार की एक महत्त्वाकांक्षी फ़िल्म बन रही थी 'गंगा-जमुना'। यह एक आंचलिक कथा पर आधारित फ़िल्म थी, जिसमें ठेठ लोकगीत और लोक संगीत की दरकार थी। शकील अरबी, फ़ारसी और उर्दू की परंपरा के नामचीन शायर। खड़ी बोली में कलाम कहने और लिखने की उनकी आदत। लोक भाषा की लचक और शब्दों का घुमाव उनकी शैली में कहाँ? इस फ़िल्म में पुरबिया लोकगीत लिखने के लिए किसी का नाम सोचा जा रहा था। दिलीपकुमार बहुत चूजी आदमी हैं, उन्हें अपने काम में पूरी परिपक्वता चाहिए। ज़रा-सा भी ऊपर-नीचे नहीं। नौशाद ने इस फ़िल्म के लिए भी शकील का नाम तय कर लिया था। दिलीपकुमार को जब, 'नैन लड़ जइहें तो मनवा मा कसक हुइबे करी...' और 'दो हंसों का जोड़ा बिछड़ गयो रे, ग़ज़ब भयो रामा जुलुम भयो रे...' गीत सुनवाए गए। तब वे शकील की 'रेंज' देखकर दंग रह गए। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि ऐसे ठेठ लोकगीत भी शकील जैसा शायर लिख सकता है। आगे तो शकील बदायूँनी ने दिलीपकुमार के लिए हर रंग और हर मूड के गीत लिखे। यहाँ मोहम्मद रफी का नाम लेना भी बहुत ज़रूरी है। शकील की कलम, नौशाद का संगीत, मोहम्मद रफी का स्वर और दिलीपकुमार की अदाकारी, इन चारों ने मिलकर फ़िल्म जगत् में कई मील के पत्थर स्थापित किए।

नौशाद ने शुरू में ही कहा था— 'शकील साहब, हम आपको एक खुला आसमान देना चाहते हैं, जिसमें जहाँ तक चाहें, आप उड़ानें भर सकते हैं।' सचमुच शकील बदायूँनी ने उस खुले क्षितिज पर सभी दिशाओं में अपनी उड़ानें भरी। 'हम दर्द का अफ़साना दुनिया को सुना देंगे...' से शकील बदायूँनी की फ़िल्म जगत् में यात्रा शुरू हुई और बिना रुके वह लगातार बढ़ती ही चली जा रही थी। एक ओर वे दर्द भरे अफ़साने लिखने के लिए मशहूर हुए। दूसरी तरफ़ वे हुस्न और इश्क़ के नायाब नग़मे लिख रहे थे। भजनों की बात चली तो उसमें भी पीछे नहीं रहे। लोकगीतों के रूप में वे अपनी क़लम के जौहर दिखाने में कामयाब रहे। वहीं राष्ट्रीय भावना और सामाजिक जागरण के भी कई गीत शकील बदायूँनी की क़लम से निकलकर आए। इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी गीतकार-शायर के रूप में

शकील बदायूँनी पूरे हिंदुस्तान में पहचाने जाने लगे थे।

गुटबाज़ी किस क्षेत्र में नहीं है? फ़िल्म जगत् में भी है। शुरू में ही मैंने कहा कि उस समय प्रमुख रूप से तीन कैंप सक्रिय माने जाते थे। दिलीपकुमार, राजकपूर और देवानंद का। हालाँकि शकील बदायूँनी इस कैंप की अवधारणा को बिलकुल नहीं मानते थे। उन्हें तो जहाँ, जिसके साथ भी काम करने के अवसर मिलते, वहाँ वे खुलकर पूरे दिल से काम करते थे। अंतत: फ़िल्मी दुनिया है तो एक व्यावसायिक दुनिया। लाख यहाँ कला के क़द्रदान हों। कला की पूजा होती हो यहाँ। परंतु सफलता की यहाँ कसौटी व्यावसायिकता ही है। समय के साथ-साथ यहाँ और गुट बनते चले गए। एक समय निर्माता-निर्देशक, लेखकों की इज़्ज़त करते थे। उनके कहे को गंभीरता से लिया जाता था। फिर धीरे-धीरे लेखक भी वहाँ वर्कर के रूप में तब्दील होते चले गए और निर्माता-निर्देशक भी उन्हें अपने अनुसार लिखने के लिए बाध्य करने लगे। शकील उन लोगों में से नहीं थे। वे फ़िल्मों में चरित्र प्रधान शायरी कर रहे थे। उन्हें पात्रों के विषय में, उनके चरित्र के बारे में जानने की उत्सुकता रहती। वे पात्रों के चरित्रों को भलीभाँति समझकर फिर उसके मूड को अपनी शायरी में अभिव्यक्ति देते थे।

यही कारण है कि उनके बोल हर फ़िल्म में पात्रानुकूल होते हैं। पात्र जैसा है, जो सोचता है, वैसा ही वह गीत गाता है, यह शकील के गीतों की अपनी ख़ासियत है। वे निर्माता-निर्देशक के कहने से अपने गीतों में रद्दोबदल करना पसंद नहीं करते थे। हमेशा उनका आग्रह रहता कि गीतों के अनुसार फ़िल्मों में सिचुएशन बनाई जाए, सिचुएशन के अनुसार गीत नहीं। वे हर तरह के और हर मूड के गीत फ़िल्मों में लिख रहे थे। परंतु उनकी शैली बहुत लोगों को रास नहीं आई। धीरे-धीरे वे अपने मित्र संगीतकारों के बीच सिमटते चले गए। 20 सालों के अपने फ़िल्मी कैरियर में उन्होंने 89 फ़िल्मों में 750 गीत लिखे, जो एक बड़ी उपलब्धि है।

उन्हें तीन बार लगातार सर्वश्रेष्ठ गीतकार के रूप में फ़िल्म फेयर पुरस्कार से नवाजा गया। 1960 में 'चौदहवीं का चाँद हो...', 1961 में 'हुस्न वाले तेरा जवाब नहीं...' और 1962 में 'कहीं दीप जले कहीं दिल...'।

फ़िल्मों के अलावा उन्होंने बहुत-सी ग़ज़लें और नज़्में लिखीं। उनके छह काव्य संग्रह प्रकाशित हैं। बेग़म अख़्तर और पंकज उधास ने उनकी ग़ैर फ़िल्मी ग़ज़लों को ख़ूब गाया, जो ख़ासी लोकप्रिय हैं। भारत सरकार ने 3 मई, 2013 को उनके सम्मान में एक डाक-टिकट जारी करके उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

शकील बदायूँनी बहुत मिलनसार और ख़ुशमिज़ाज आदमी थे। प्राय: मुँह में पान चबाते रहते। रुक-रुककर बोलते परंतु बहुत वज़नदार एवं सारगर्भित। मित्रों का वार्तालाप देर तक सुनने के बाद अंत में तर्कसम्मत अपना निर्णय सुनाकर विषय का पटाक्षेप करने में वे माहिर थे। उनके मित्रों में सर्वश्री नौशाद अली, ए.आर. कारदार, दिलीपकुमार, भारत भूषण और मोहम्मद रफी के नाम प्रमुख हैं। शकील को सैर-सपाटे, शिकार खेलने और पतंग उड़ाने का बहुत शौक था। उन्हें किसी की व्यक्तिगत ज़िंदगी पर बातचीत करना कभी अच्छा नहीं लगता था। वे हमेशा एक भविष्य द्रष्टा के रूप में जीवनभर जिए। अपने विषय में भी वे ज़्यादा बातचीत करना पसंद नहीं करते थे। पत्नी सलमा के साथ उन्होंने एक सफल वैवाहिक जीवन जिया। उनकी पाँच संतानें हुईं; रजिया शकील, सफ़िया शकील, नजमा शकील, जावेद शकील और तारिक़ शकील।

शकील बदायूँनी अदब की दुनिया में बुलंदियाँ हासिल करने के बाद फ़िल्म जगत् गए। वहाँ उन्होंने ग़ज़ल और नज़्मों के अलावा अत्यंत लोकप्रिय गीत एवं भजन लिखे। हर होली के त्योहार में रेडियो पर उनके होली गीत ज़रूर सुनाई देते हैं। इन गीतों के बजे बिना तो होली का यह रंगोत्सव पूरा ही नहीं होता। इस प्रकार फ़िल्मों के लिए उत्कृष्ट गीत लेखन की परंपरा में शकील बदायूँनी का नाम बहुत आदरपूर्वक याद किया जाता है। कई साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं ने समय-समय पर आपको सम्मानित किया। उपराष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन और प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने भी आपकी सफलता पर आपको शुभकामना संदेश भेजे और आपके फ़न की प्रशंसा की।

ज़िगर मुरादाबादी, राज मुरादाबादी, एज़ाज़ लख़नवी, मसूद अख़्तर जैसे नामी शायर शकील के कलाम की तारीफ़ करते थे। फ़िल्मों के द्वारा तो पूरे हिंदुस्तान में और देश के बाहर भी उनकी शोहरत फैलती ही चली गई। 54 वर्ष की अल्पायु में मधुमेह के गंभीर हो जाने के कारण 20 अप्रैल, 1970 को यह मशहूर और हरदिल अज़ीज शायर-गीतकार हमेशा—हमेशा के लिए विदा हो गया।

शकील भले ही अपने बीते जीवन पर ज़्यादा नहीं बोले, परंतु ज़माना उनके साथ चलता रहा, वे ज़माने के साथ नहीं। तभी तो वे यह कह सके— 'मैं ऐ शकील ज़माने के साथ क्यों जाऊँ? ज़माना मेरे साथ चलता जाता है।'

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार है। संपर्क- 326 बी/आ महालक्ष्मी नगर, इंदौर-452010 (म.प्र.), मो. 9425167003

■

पुस्तक समीक्षा

किशनगढ़ चित्रशैली और ऐतिहासिक प्रेमकथा- बनीठनी

- बी.एल. आच्छा

पुस्तक विवरण-

कृति	:	बनीठनी (प्रेमकथा से चित्रकला तक)
लेखक	:	नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
प्रकाशक	:	ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, वृंदावन (उत्तर प्रदेश)
मूल्य	:	₹190/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2021

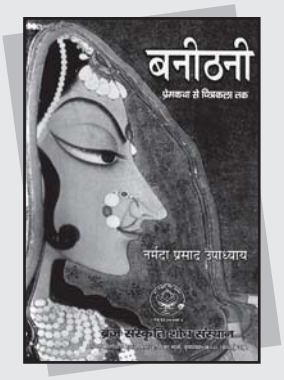

नर्मदाप्रसाद उपाध्याय भारतीय कला और साहित्य के अन्त:संबंधों के अध्येता हैं। प्राचीन साहित्यिक कृतियों और उनसे संबद्ध लघुचित्रों को लेकर अन्तर- अनुशासनिक विश्लेषण और ललित व्याख्याएँ भारतीय सांस्कृतिक विरासत का पुनराख्यान करती हैं। ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, मथुरा से प्रकाशित 'बनीठनी' पुस्तक किशनगढ़ (राजस्थान) शैली की चित्रकला की सौंदर्य- छवि मात्र नहीं है, बल्कि किशनगढ़ राजघराने की इतिहास- कथा का हिस्सा भी। यों भी किशनगढ़ की सौंदर्यमूर्ति 'बनीठनी', राजा सावंतसिंह बनाम नागरीदास, रंगचितेरे निहालचंद और कवि घनानन्द की जीवन्त उपस्थिति से किशनगढ़ को रेखांकित किया जा सकता है। इसमें सामंत काल का समाजशास्त्र है, राजघरानों की सत्ता के चक्रव्यूह हैं, प्रेम और भक्ति का संगीत है, रंगशालाओं की संस्कृति है ,चित्रकला के सौन्दर्याविष्ट उपहार हैं। सत्ताकी संस्कृति में श्रृंगार के भक्ति में रूपांतरित होने की वैराग्य- कथा है। घनानन्द की साहित्य साधना के साथ यह इतिहास- कथा और भी महत्ता पा जाती है।

'बनठनी' को लेखक ने जिस अपूर्व सौन्दर्य, लालित्य, नैसर्गिक छवि के साथ चित्र- लिपि से शब्द- लिपि में रूपांतरित किया है, वह भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का उदात्त रूप है। किशनगढ़ी चित्रशैली के लिए एरिक डिकिन्सन को सही अर्थों में उद्धृत किया गया है -''वह मेरे लिए विस्मय के उत्कर्ष का क्षण था । इन चित्रों को देखकर मुझे लगा जैसे मेरी आँखों के सामने अबीसीनियन संगीत साकार हो गया हो। इतनी सुन्दर संगीतात्मक कृष्ण-लीला की रंगीन सृष्टि पहली बार देखी ! राधा और कृष्ण का अलौकिक सौन्दर्य, अद्भुत स्थापत्य और निसर्ग की स्वर्गीय शोभा, ये सब मेरे सामने साकार हो उठे।'' इन वाक्यों में जैसे चौंसठ कलाओं में से कुछ कलाएँ झूमती नजर आती हैं। नर्मदाप्रसाद उपाध्याय इन चित्रलिपियों में इन्हीं ''कलाओं को ध्वनित होते सुनते हैं। ये कलाएँ इतिहास दर्शन भी कराती हैं और भक्ति या दैवीय राग में अनैतिहासिक विस्तार भी पा जाती हैं। राधा-कृष्ण जितने ऐतिहासिक हैं, उससे अधिक अपने अनैतिहासिक वर्तमान में भी।

इन लघुचित्रों (मिनिएचर्स) में सौन्दर्य छवि का जिसतरह रूपांकन हुआ है, उससे भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का उज्ज्वल पक्ष उभरकर आता है। लेखक कहता है - ''मोनालिज़ा इस संसार की स्त्री है। यथार्थ है। लेकिन 'बणीठणी' यथार्थ की फतांसी है।'' कालिदास ने भी प्रकृति- कन्या शकुन्तला के लिए 'कांचन पद्म' उपमान दिया है- सोने का कमल । मगर इस स्वर्ण- कमल में सुगन्ध है। ऐसी सौन्दर्य छवियों में दैवीय तत्त्वों का सन्निवेश हुआ है। 'बनीठनी' में भी दैवीय सौन्दर्य के अंगराग हैं- कला-साहित्य- प्रेम और भक्ति की सन्निधि के साथ । इस अंतर्भाव को इन पंक्तियों में लक्षित किया जा सकता है -''यह अंकन राधा के सौंदर्य का चित्रांकन नहीं, सौन्दर्य का राधांकन है।'' इस पुस्तक में चित्रकार निहालचन्द के लघुचित्र स्वयं उसके जीवन का हिस्सा हैं। निहालचन्द की चित्र- लिपि इस इतिहास- कथा को जीवन्त बना देती है।

'बनीठनी' के जीवन वृत्तान्त से इस पुस्तक के कई पक्ष जुड़े हैं। एक तरह से चार कथाएँ इस एक कथा से जुड़ी हुई है- खरीदी हुई दासी के रूप में 'बनीठनी' की कथा, सावंतसिंह- बनीठनी की प्रेम कथा, चित्रकार निहालचन्द की चित्रलिपि के साथ सुमित्रा से प्रेम की कथा और बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार से ठुकराये

गये कवि घनानन्द की कथा।

'बनीठनी' दिल्ली की मंडी से खरीदी गयी दासी- पुत्री है। राजाओं की दासियों से उत्पन्न इन पुत्रियों को सौन्दर्याविष्ट छवियों के बावजूद राजघराने की पात्रता नहीं थी। किशनगढ के राजा राजसिंह ने सर्वाधिक मूल्य देकर उसे खरीदा । पर उसके सौन्दर्य से आसक्त हुए उनके पुत्र सावन्तसिंह । देहासक्ति के बजाय कला-साहित्य और भक्ति की सन्निधि की चाहत थी। रानी लाल कुँवरि के रहते हुए बनीठनी को उपपत्नी बनाने के कारण वे पिता द्वारा सिंहासन के अधिकार वंचित किये गये । विमाता बांकावती ने अपने बेटे बहादुर सिंह को सत्तासीन करवा दिया । यद्यपि वे सत्ताच्युत भी हुए। सांवतसिंह अच्छे योद्धा होने के बावजूद भक्ति और साहित्य में रमे थे। नागरीदास के रूप में उनके अड़सठ ग्रंथों का प्रकाशन 'नागरी समुच्चय में हुआ है। बाद में बनीठनी के साथ वृंदावन प्रस्थित हो गये, जहाँ आज भी उनकी समाधियाँ सुरक्षित हैं।

जिन चित्रों से किशनगढ़- शैली प्रसिद्ध हैं, उसके रंग उकेरने वाले निहालचन्द और सुमित्रा की प्रेम- कथा भी भावपरक है। निहालचंद ने ही बनीठनी के चित्र बनाये थे, इसी लिए सावन्तसिंह और बनीठनी की कथा में वह इसतरह मौजूद हैं कि अंत में बहादुरसिंह के अनाचार से बचाकर बनीठनी सुमित्रा का हाथ निहालचन्द के हाथ में थमा देती है। युद्ध और प्रेम इसी कथा का हिस्सा है और इन कथाओं का योजक रूप भी। सावन्तसिंह का नागरीदास बन जाना और अंततः बन्नो के साथ वृंदावन चले जाना प्रेम और भक्ति, श्रृंगार और वैराग्य की चरम युति है। बनीठनी का यह कथन सामन्ती यथार्थ में प्रेम की उज्ज्वल नीलमणि और आसक्ति की उज्ज्वल भक्ति का युग्म बन जाता है- ''मैं फूल नहीं हूँ। चाहकर भी फूल नहीं हो सकती । मैं एक गोली अर्थात गुलाम हूँ, अकुलीन अस्पृश्य और अछूत। आपके द्वारा दिया गया कोई भी पुरस्कार मेरे इस भाग्य को नहीं बदल सकता ।'' कितना दुखद लगता है कि जिस राजघराने में निम्बार्क और वल्लभाचार्य का पुष्टि मार्ग हो, कला का वैभव हो, साहित्य का अनुराग हो, भक्ति की अन्तःसलिला हो, वहाँ का सामन्ती समाजशास्त्र इस सबका कठोर यथार्थ है।

किशनगढ़ की रंगशाला इस कला साधना का सामंती-संरक्षण है और यहीं घनानन्द की सन्निधि प्रेम और भक्ति का ''सूधा मारग'' बनाती है। बन्नो यानी बनी-ठनी, सावंतसिंह यानी नगरीदास की प्रेमा भक्ति, निहालचन्द के सुमित्रा-प्रेम में पगी चित्रलिपि और घनानन्द का 'सनेह मारग' इसी रंगशाला अपने रंग बिखेरते हैं। नर्मदाप्रसाद उपाध्याय की इस पुस्तक की भूमिका में ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, मथुरा के सचिव लक्ष्मीनारायण तिवारी ने इतिहास, भक्ति, अभिलेखों और नागरीदास-बनीठनी के साहित्य के साथ ब्रजमंडल के ऐतिहासिक स्मारकों के उल्लेख से इस पुस्तक को समृद्ध किया है। और पुस्तक के अंत में बनीठनी 'रसिकबिहारी' कृत पदावली को संग्रहीत किया गया है। पर पुस्तक के अन्त में जो रंगीन लघुचित्र संयोजित है, वे 18वीं सदी की किशनगढ़ चित्रशैली की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा के प्रतिमान हैं। सामंती यथार्थ की कठोरता में भी प्रेम, भक्ति, चित्रकला, दर्शन, वैराग्य और आत्मराग से मंडित पात्रों की भावदशाओं की अंग-भाषा कितनी खिली हुई है, यह इस पुस्तक के साहित्य, चित्र और व्याख्याओं की सुफल परिणति है।

पर पुस्तक में नर्मदाप्रसाद उपाध्याय का योगदान क्या है और साहित्य के साथ कलाओं के अन्तः संबंधों के अनुशासन की विचारणा का सैद्धान्तिक पक्ष किस तरह व्याख्यायित हुआ है, यह देखना भी जरूरी है। असल में इन चित्रों में जो दिखता है, लेखक उसे अंगों की भाषा में डिकोड कर लेता है और अन्ततः मानस-पटल पर उकेर देता है। यह डिकोडिंग एकदेशीय नहीं होता। इसके साथ संगीत, रंग रूप, रेखाएँ, क्षेत्रीयता, श्रृंगारमयी दैवीयता आदि इसतरह चले आते हैं कि हृदय का भावोज्ज्वल पाठक तक चला जाता है। कभी लगता है कि ललित गद्यकार कवि- रूप में उतर रहा है। फिर बिहारी याद आ जाते हैं -''वह चितवनि कछु और है, जिहिं बस होत सुजान।'' केवल अपने अलंकरण- उत्कीर्णन नहीं, हार्दिक रंगोज्ज्वल प्रस्तुति के साथ। भारतीय कला-दृष्टि का यह वैभव ,जिसमें सादृश्यों की, उपमाओं की, रूप के कोमलतम सज्जायक तत्त्वों की ऐन्द्रजालिकता होती है, पर वे सब हृदय के भाव तत्त्वों की उदात्त सजीव सृष्टि के निर्मायक होते हैं। आखिर कला को कला दृष्टि के सांस्कृतिक रूप से ही तो देखना होगा, पर इससे योरपीय कलादृष्टि के अध्येता भी अभिभूत है।

मध्यकाल का साहित्य ब्रज-अवधी में जितना लोक से स्पन्दित है और भक्ति के लोकराग से संजीवित, उसे काव्य और चित्रकला के साथ सांगीतिक अनुषंग में परखना भी जरूरी है। इसीलिए इस पुस्तक में बनीठनी कृत पदावली का संधान किया जाना चाहिए। राग-रागिनियाँ, चित्रावली, ऋतु-चक्र, लोक - उत्सव, प्रिय-राग, आकांक्षाएँ और ब्रजमंडल के पावन स्पर्श के अनेक चित्र 'बनीठनी' की काव्यकृति में सजल बन गये हैं । मध्यकाल में रसोपासना के साहित्य में 'बनीठनी' एक जीवन्त अध्याय है, जिसके लिए श्री उपाध्याय ने सटीक ही लिखा है- ''राजा सावंतसिंह जिन्हें नागरीदास के रूप में जाना गया, उनका क्या मोल हो सकता था। वे तो राजा थे, लेकिन 'बणीठणी जी के हाथों बिक गये और वह बन्नो जो ढाई सौ अशरफियों में दिल्लीके हाट में बिकी थी, ''बणीठणी'' बनकर अनमोल हो गई।''

- समीक्षक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
नॉर्थटाऊन अपार्टमेंट, फ्लैट नं-701, टॉवर-27, स्टीफेंशन रोड (बिन्नी मिल्स), पेरंबूर, चेन्नई (तमिलनाडु)-600012, मो.-9425083335

■

पुस्तक समीक्षा

प्रदेश के शास्त्रीय संगीत स्वर पर केंद्रित पुस्तकः पंचामृत

– सतीश राठी

पुस्तक विवरण–

कृति	:	पंचामृत
लेखक	:	अश्विनी कुमार दुबे
प्रकाशक	:	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली और रज़ा फ़ाउण्डेशन का सह प्रकाशन
मूल्य	:	₹250/–
प्रकाशन वर्ष	:	2019

अश्विनी कुमार दुबे एक बहुआयामी लेखक के रूप में सामने आए हैं। किसी लेखक का व्यंग्यकार से उपन्यासकार फिर कहानीकार, शोधपरक जीवनीलेखक, देश के इतिहास पर शोध पुस्तक लेखन के स्वरूप के बाद, अब एक संगीत रसिक के रूप में पांच महान शास्त्रीय संगीत गायकों पर पुस्तक लेकर आना बहुत बड़ा काम है। इस पुस्तक की इसी महत्वपूर्ण उपलब्धि के कारण रजा फाउंडेशन ने इसे सहर्ष राजकमल प्रकाशन जैसे प्रतिष्ठित प्रकाशन के माध्यम से प्रकाशित किया है।

हमारे देश में संगीत घरानों पर बहुत कम पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। शास्त्रीय संगीत के गंभीर श्रोताओं की मात्रा देश में बहुत कम है और इसीलिए ऐसे संगीतकारों पर, ऐसे गायकों पर पुस्तकें बड़ी मुश्किल से आ पाती हैं। इस पुस्तक के माध्यम से यह महत्वपूर्ण कार्य श्री दुबे ने पूर्ण किया है।

पंचामृत में श्री दुबे ने संगीत मार्तंड रजब अली खान, उस्ताद अमीर खां, पंडित कुमार गंधर्व, श्री कृष्णराव मुजूमदार एवं आचार्य गोकुलोत्सव जी महाराज के व्यक्तित्व और कृतित्व पर बड़ी महत्वपूर्ण चर्चा की है। नई पीढ़ी के लिए यह पुस्तक इन महान हस्तियों के जीवन को समझने के लिए एक मार्गदर्शक पुस्तक के रूप में सामने आई है। जब संगीत में आकंठ डूबा हुआ कोई व्यक्ति शास्त्रीय संगीत की रसिकता पर कोई पुस्तक रचता है तो वह पुस्तक भी शास्त्रीय भाव से ओतप्रोत हो जाती है। यह पुस्तक इन बड़े कद के व्यक्तित्वों की जीवन व्याख्या करती हुई बहुत महत्वपूर्ण पुस्तक है, जिसे बहुत श्रम के साथ लेखक ने लिखा है। अशोक बाजपेयी ने अपने आमुख में इसी महत्वपूर्ण बात को चिंता के साथ रेखांकित किया है।

अश्विनी कुमार दुबे का बचपन मैहर में बीता, जहां पर निरंतर बाबा अलाउद्दीन खान साहब से उनका संपर्क बना रहा तथा बाबा की स्मृति में मनाए जाने वाले संगीत समारोह में भी वह निरंतर शामिल होते रहे। संगीत के कई व्यक्तित्व उनके निकट परिचय में रहे। जब नौकरी के अंतिम वर्षों में देवास मध्यप्रदेश में उनका रहना हुआ तो वहां पर उस्ताद रज्जब अली खान साहब और पंडित कुमार गंधर्व के बारे में लोगों की श्रद्धा ने उन्हें इस विषय पर लेखन के लिए उत्प्रेरित किया। श्रीमती कल्पना झोकरकर जो श्रीकृष्णराव मजूमदार की बेटी हैं और शास्त्रीय संगीत गायन की जानी मानी शख्सियत हैं, उनसे भी आपने संपर्क स्थापित किया और इस तरह इस पुस्तक की भूमिका उनके मन में तैयार हुई। इस तरह की खोज पर पुस्तक लिखना दुष्कर काम होता है, लेकिन उन्होंने आकाशवाणी में और अन्य विभिन्न लाइब्रेरी में सारी खोज करते हुए प्रामाणिक सामग्री को एकत्र किया और उसे प्रामाणिक तरीके से रोचक रूप में लिखकर पाठकों के लिए प्रस्तुत किया।

संगीत मार्तंड रजब अली खान साहब का जन्म सितंबर 1874 में नरसिंहगढ़ जिले में हुआ। उस दिन रोहिणी नक्षत्र में जन्माष्टमी का पर्व था और हिजरी साल का सातवां महीना होने से उसे बड़ा सौभाग्यशाली माना गया। उनके घर में संगीतमय वातावरण

था। पिता मुगल खां ख्यात गायक थे, इसलिए प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही प्रारंभ हुई। 4 साल की उम्र से ही उनका रियाज प्रारंभ हो गया और 10 वर्ष की उम्र तक तो वह सभाओं में गाने लगे थे। एक बार नेपाल के एक संगीत कार्यक्रम में उन्होंने जलतरंग बजाकर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया था। रजब अली खान साहब के मामा देवास रियासत के नामी गायक थे, अत: उनके आग्रह पर जीवन यापन के हिसाब से पूरा परिवार देवास में आकर रहने लगा। देवास टेकरी पर मां का मंदिर, पास में शील नाथ बाबा का आश्रम और देवास के मशहूर अखाड़े। यहां पर उनका काम हो गया अखाड़े में कुश्ती लड़ना, कसरत करना और फिर राज दरबार में संगीत के लिए जाना। देवास राज दरबार में जब उन्होंने पहली बार उस्ताद बंदे अली खान साहब की गायकी सुनी तो प्रभावित होकर उन्होंने उनसे गंडा बंधवाने का अपने मन में निर्णय ले लिया। देवास के महाराज नियमित सभाओं में उन्हें अच्छे श्रोता के रूप में देख रहे थे और एक दिन अपने मामू के कहने पर रजब अली ने महाराज के सम्मुख गायन प्रस्तुत किया, जिससे महाराज प्रसन्न हुए और उनकी खुराक आदि की व्यवस्था नियमित करवा दी। बाद में वह बंदे अली खान साहब के नियमित शिष्य बन गए और उन्होंने अपने इस प्यारे शिष्य को तंत्रकारी के कई रहस्य बताए। रजब अली खान साहब की अकड़ और साहसी जीवन के बहुत सारे रोचक किस्से इसमें शामिल हैं, जिन्हें पढ़ने में बहुत आनंद आता है ।85 वर्ष की उम्र में जब उनका निधन हुआ तो उनकी अंतिम इच्छा अनुसार उन्हें बाबा शीलनाथ की धूनी के पास में ही दफनाया गया और वही टेकरी पर उनकी समाधि बनाई गई। सारे देश में उनके निधन का बड़ा दुख मनाया गया। इंदौर शहर अपने इतिहास और अपनी संस्कृति के लिए सदैव प्रसिद्ध रहा है। अहिल्याबाई की नगरी, होलकर राजाओं का गौरवशाली इतिहास, यहां का साहित्य, यहां का संगीत और यहां के खेल ,इन सबकी एक दीर्घ परंपरा इंदौर शहर के साथ जुड़ी हुई है। खाने-पीने के शौकीन इंदौर शहर का हर दिन किसी उत्सव जैसा मनता है और यहां के दाल, बाफले, बाटी, चूरमा विश्व प्रसिद्ध हैं। इस शहर की खूबसूरत जीवन शैली से प्रभावित होकर अकोला के उस्ताद शाहमीर खान साहब इंदौर में आकर बस गए थे। इंदौर के बम्बई बाजार को उन्होंने अपना आशियाना बनाया। वर्ष 1912 में उनके यहां पर बेटे अमीर खान साहब का जन्म हुआ। उनके ननिहाल में भी संगीत की पूरी परंपरा थी ,तथा देवास के रजब अली खान साहब से भी शाहमीर खान साहब की गहरी दोस्ती थी। दोनों के परिवारों के संबंध इतने मधुर और रस रंग में डूबे हुए थे कि ,बालक अमीर खान इन सब से प्रभावित होकर संगीत की तरफ आकर्षित हो गए। उनके पिता उन्हें सारंगी का एक बड़ा वादक बनाना चाहते थे लेकिन कोई घटना ऐसी घट गई उसके बाद उन्होंने गायक बनने का निर्णय ले लिया। उस समय इंदौर में एक से बढ़कर एक नामी-गिरामी कलाकार थे और उन सब की संगत में अपने मित्र रामनाथ श्रीवास्तव के साथ उन्होंने बम्बई बाजार के पेशेवर संगीतज्ञ कलाकारों से भी सीखने में कोई परहेज नहीं किया। उस समय महाराज तुकोजीराव होलकर का इंदौर में शासन था। वह उस्ताद नसीरुद्दीन खान डाबर की ध्रुपद गायकी के बड़े प्रशंसक थे। अमीर खां ने सीखा तो कई लोगों से लेकिन अपने अब्बाजान से इतने अधिक प्रभावित थे कि वे उनके ही गंडाबंध शिष्य बने। उस्ताद रज्जब अली खान साहब को गुरुतुल्य ही मानते थे और उन्होंने भी इन्हें संगीत की बहुत सारी बारीक बातें सिखाई तथा उनकी गायकी को तराशने का काम किया। अमीर खान साहब ने उस्ताद वाहिद खान साहब से भी संगीत के नए-नए प्रयोग सीखें। उन्हीं की एक शिष्य दिल्ली की प्रसिद्ध गायिका मुन्नी बाई से उनका नजदीकी संपर्क बना और यह संपर्क प्यार में बदल गया। बाद में उन्होंने उससे विवाह कर लिया। पहली पत्नी के निधन और दूसरी पत्नी के तलाक देने के बाद यह उनका तीसरा विवाह था और इनसे उन्हें एक संतान प्राप्त हुई। हालांकि यह विवाह लंबा नहीं चला और इनसे संबंध विच्छेद होने के बाद उन्होंने चौथा विवाह इंदौर में ही रईसा बेगम से किया जिनसे उनको दूसरी संतान प्राप्त हुई। बड़े कलाकारों के जीवन के सांसारिक परिदृश्य पर यह पुस्तक बड़े खुलेपन से लेकिन प्रामाणिक स्वरूप में दस्तावेज के रूप में सामने आई है। यही इस पुस्तक की विशेषता है।

सभी धर्मों के प्रति समान रूप से आदर रखने वाले अमीर खां साहब इंदौर के भूतेश्वर महादेव मंदिर और जूनी इंदौर के शनि मंदिर के संगीत कार्यक्रमों में सदैव शिरकत करते और ऐसे अवसरों पर उनके द्वारा नाद ब्रह्म की उपासना सहर्ष अनुभव की जा सकती थी। काशी के लक्ष्मी नारायण मंदिर में भी उन्होंने उस्ताद बिस्मिल्लाह खान, किशन महाराज, लच्छू महाराज, ईश्वर लाल मिश्र के साथ ऐसा राग मल्हार गया कि वहां पर काले बादल उमड़ घुमड़ कर आए और झमाझम बरसात होने लगी। सारे श्रोता पानी में भीगकर उनके संगीत का आनंद लेते रहे।

उनका बेटा अकरम इंजीनियर बन कर कनाडा में शिफ्ट हुआ तो विदेशों में भी उनका जाना आना लगा रहा और वहां पर भी उन्होंने अपने संगीत कार्यक्रमों से लोकप्रियता के नए-नए कीर्तिमान स्थापित किए। बाद के समय में अमीर खान साहब कोलकाता में

विभिन्न फिल्म निर्माण कंपनियों के संपर्क में आए। प्रसिद्ध सरोद वादक अली अकबर खां के साथ में उन्होंने मिलकर फिल्म जगत में भी काम किया। फिल्म बैजू बावरा में उन्होंने तानसेन के रूप में गीत गाया और सारे फिल्म जगत को भी अपनी प्रस्तुतियों से चमत्कृत कर दिया। इसके अलावा भी हिंदी और मराठी की फिल्मों में आपका गायन और आपके गाए भजन चर्चा में रहे। अमीर खान साहब और उनके समकालीनों के बारे में चर्चा करते हुए लेखक ने संगीत की बहुत बारीक बारीक बातों को इतनी प्रवीणता के साथ प्रस्तुत किया है कि, उससे यह सहज ज्ञात होता है कि लेखक का शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में बहुत विस्तृत और बारीक ज्ञान हैं। गायकी के प्रयोगों पर उन्होंने पूरे विस्तार के साथ तकनीकी बातों पर जानकारी देते हुए इस आलेख खंड को तैयार किया है और यह लेखक के शोध और समर्पण को दर्शाता है।

अमीर खान साहब मुस्लिम परिवार में पैदा जरूर हुए लेकिन जीवन भर रूढ़ीवादी परंपराओं से मुक्त रहें। उन्होंने पद्म भूषण की उपाधि मिलने के वक्त यह भी माना कि उन्हें जीवन में जो कुछ भी मिला है वह भगवान भूतेश्वर की कृपा से मिला है। अपनी विशिष्ट गायकी शैली को उन्होंने इंदौर घराना नाम दिया और इस प्रकार वह इंदौर घराना के संस्थापक बने। परिवार में उनकी संगीत परंपरा आगे नहीं बढ़ी। उनका पहला बेटा तो इंजीनियर रहा और दूसरा बेटा शाहबाज जिसका घर का नाम हैदर था आज के वक्त का नामी फिल्म स्टार है।

भारत सरकार ने वर्ष 1967 में उन्हें संगीत नाटक अकादेमी का सर्वोच्च पुरस्कार दिया और 1971 में भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण की उपाधि से सम्मानित किया। एक कार एक्सीडेंट में उस्ताद अमीर खान इस जहां से रुखसत कर गए।

शास्त्रीय संगीत की दुनिया में कुमार गंधर्व का नाम एक किंबदंती के रूप में लिया जाता है। कर्नाटक के एक छोटे से गांव में लिंगायत संप्रदाय में दीक्षित और गाने बजाने में निपुण सिद्धरमैया के घर पर तीसरी संतान के रूप में शिवपुत्रैया का जन्म हुआ। उसके बचपन के आलाप को ,उसके संगीत प्रेम को पिता ने महसूस कर लिया था। उसके संगीत का चमत्कार उनके कुलगुरु के सामने जब प्रस्तुत हुआ तो कुलगुरु ने उन्हें वक्षस्थल से लगा लिया और यह कहा कि, यह बालक गंधर्व लोक से आया हुआ अवतारी बालक है और आज से इसका नाम कुमार गंधर्व होगा।

इस समूची गाथा का बड़ा ही सुंदर और रोचक वर्णन लेखक ने इस पुस्तक में किया है। लेखक की किस्सागोई सामान्य किस्म की नहीं है। वह मन के भीतर समा जाने वाली है और जब पाठक उसे पढता है तो उसी में खो जाता है। बड़ी ही रोचक शैली में कुमार गंधर्व का पूरा जीवन इसमें समाहित किया गया है। उनके जन्म से लेकर उनके मरण तक के बीच में उनका विवाह,उनके गुरु,उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनकी जीवन यात्रा, उनका संगीत, उनके द्वारा की गई राग रागिनीयों की रचनाएं, उनकी बीमारी, उनके जीवन के दुखद क्षण सब कुछ लेखक ने इतनी रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है कि पाठक से किताब छूटती नहीं। जीवन के अंतिम काल में कुमार सगुन से निर्गुण हो गए। उन्होंने कबीर को खूब गाया और जीवन को कबीर की तरह ही छोड़ कर चले गए।

देवास का तात्पर्य ही होता है जहां देवताओं का वास होता हो और वाकई में देवास की माताजी की टेकरी और देवास के शीलनाथ बाबा का आश्रम देवास को विश्व प्रसिद्ध कर गए, लेकिन देवास संगीत का भी बड़ा केंद्र उस्ताद लोगों के कारण बना, क्योंकि संगीत के बड़े-बड़े लोग यहां से निकले। संगीत मार्तंड रजब अली खान साहब और कुमार गंधर्व के बाद कृष्णराव मुजुमदार भी देवास की ही देन रहे।

कृष्णराव जी कुमार गंधर्व के समकालीन रहे, उनके अच्छे मित्र रहे और उन्हें देवास में लाकर उनकी तीमारदारी में जुड़ने वाले भी रहे। मध्यम वर्गीय परिवार में जन्म लेकर अपनी मेहनत से इंजीनियर बनना और उतनी ही मेहनत से संगीत में नाम कमाना यह काम मुजुमदार जी ने बखूबी किया। उनके पिता जी के यहां बच्चे जन्म लेने के बाद कुछ समय बीमार रहते और मर जाते, इसलिए उनके पिताजी इनके जन्म के समय बड़े चिंतित रहे, लेकिन स्वामी मुक्तानंद जी का ऐसा आशीर्वाद मिला कि कई सारी बीमारियों से लड़ते हुए यह स्वामी जी की भविष्यवाणी को सच कर गए ,जो उन्होंने कहा था कि तुम्हारे घर पाहुन नहीं उद्धारक आया है। वाकई में घर की खराब आर्थिक स्थिति का उद्धार करने में इनका बड़ा योगदान रहा। जीवन में कष्ट देखने के बाद आदमी सदैव यह सोचता है कि अब आने वाले परिवार को कष्ट नहीं आना चाहिए और इसलिए आर्थिक परेशानियों की जो समस्या अपने परिवार के साथ इन्होंने देखी और भोगी, उससे बड़े होने के बाद अपने परिवार को बचाने का काम इन्होंने बड़ी खूबसूरती के साथ निर्वहित किया । किस्सागोई के सशक्त अंदाज में लेखक ने उनके शास्त्रीय संगीत के जीवन, उनके जीवन के आर्थिक पक्ष और उनके समकालीन विभिन्न साहित्यकारों के साथ उनके मधुर संबंध, इन पर विस्तार के साथ लिखा है। किसी व्यक्ति के जीवन के बारे में इतनी खोज करना और फिर उनके बच्चों से जानकारी लेकर इतना लिखना वाकई में प्रणाम करने योग्य है। कृष्ण राव जी की लड़की श्रीमती कल्पना झोकरकर

शास्त्रीय संगीत का इंदौर का जाना माना नाम है और उन्होंने उनकी पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में एक संगीत समारोह का भी आयोजन प्रारंभ कर दिया है। क्योंकि परिवार में सभी कृष्ण राव जी को मामा साहब कहते थे इसलिए यह फाउंडेशन भी ''मामा साहब मुजूमदार म्यूजिक फाउंडेशन'' के नाम से स्थापित किया गया है। कृष्ण राव जी संगीत में, राग में, रंग में जीवन भर बहुत डूबे और बहुत गाया। गांधी जी के जीवन दर्शन ने भी उन्हें प्रभावित किया और महर्षि अरविंद से भी वह जुड़े रहे। इतना सारा खोज कर पुस्तक में प्रस्तुत करने से यह पुस्तक इन संगीत साधकों के ऊपर एक खोजपूर्ण पुस्तक के रूप में सामने आई है।

अंतिम शास्त्रीय संगीत गायक के रूप में पद्मभूषण एवं पदमश्री से सम्मानित आदरणीय आचार्य गोकुलोत्सव महाराज पर केंद्रित किया गया है। गोकुलोत्सव महाराज वर्तमान में जीवित हैं तथा महाप्रभु वल्लभाचार्य की परंपरा में पुष्टीमार्ग संप्रदाय के इंदौर के मल्हारगंज में स्थित एक विशाल हवेली मंदिर के आचार्य हैं। पद्मश्री और पद्म भूषण से सम्मानित होने के अतिरिक्त कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से वह सम्मानित होकर शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में हमारे राष्ट्र के गौरव के रूप में विद्यमान हैं ।

गोकुलोत्सव महाराज के प्रथम गुरु तो उनके माता-पिता ही हैं। अपने पिता से उन्होंने संस्कृत, हिंदी, ज्योतिष, वैद्यक और उर्दू-फारसी की विधिवत शिक्षा प्राप्त की। माता से श्रीमद्भागवत महापुराण का गंभीर ज्ञान एवं अन्य धार्मिक पौराणिक ग्रंथों की शिक्षा प्राप्त की। मंदिर की धार्मिक परंपरा, राग, भोगऔर श्रृंगार का पूर्ण पालन करते हुए मंदिर में प्रभु को कीर्तनकार के रूप में राग गायन की उत्कृष्ट परंपरा का निर्वहन करने में आप पूरी तरह निष्णात हैं और यह सब अपने पिताजी से उन्होंने सीखा है। उनके पिताजी भी बहुत अच्छा पखावज बजाते थे। वे ध्रुपद धमार एवं पुष्टिमार्गीय पद गायन में उच्चतर स्थान रखते थे। 5 वर्ष की उम्र से ही बालक गोकुलोत्सव जी को पखावज बजाना और सिखाना उन्होंने प्रारंभ कर दिया था और मंदिर की सारी परंपराएं सिखाना भी। उनके पिताजी का यह मानना था कि पखावज बजाना बहुत श्रम साध्य कार्य है, इसलिए वादक का शरीर मजबूत होना चाहिए। उनके इस विचार के लिए उन्होंने इन्हें पहलवानी की शिक्षा भी दी। सुबह चार बजे से व्यायामशाला में दंड बैठक, मुद्गर घुमाना और शरीर को मजबूत करना इस कठोर दिनचर्या का पालन करने से उनके जीवन में भी अनुशासन बना रहा है। बल्लभ कुल संप्रदाय के देश में बहुत सारे स्थानों पर मंदिर हैं और श्री गोकुलोत्सव महाराज ने सबसे पहले 8 वर्ष की उम्र में मुंबई स्थित वल्लभ संप्रदाय के मंदिर के एक धार्मिक समारोह में अपने गायन की प्रस्तुति दी। तब से अब तक वह देश के समस्त प्रतिष्ठित संगीत समारोहों में और विदेश में कई अंतरराष्ट्रीय मंचों से अपनी प्रस्तुतियां दे चुके हैं । खयाल गायकी की शिक्षा उन्होंने पंडित मोरेश्वर राव गोलवलकर जी से प्राप्त की और खयाल गायकी में अपना महत्वपूर्ण नाम स्थापित किया। इंदौर में उन दिनों उस्ताद अमीर खान साहब का बहुत नाम था। गोकुलोत्सव महाराज बचपन से ही सारा अच्छा सीखने के लिए एकाग्र होकर लगे रहे, अत: उन्होंने उस्ताद जी से भी बहुत कुछ सीखा। कालांतर में अपनी निजी गायकी की शैली भी विकसित की।

गोकुलोत्सव महाराज सबसे पहले वल्लभ संप्रदाय के सर्वमान्य आचार्य हैं। यह पद उन्हें वंश परंपरा से प्राप्त है। अपने पिता से प्राप्त संगीत की परंपरा को अब वह अपने पुत्र को प्रदान कर रहे हैं। उनका कहना है कि मैं तो कहीं भी, चाहे मंदिर में या स्टेज पर, जब भी गाता हूं तो अपने प्रभु की पूजा के रूप में ही गाता हूं। एक आचार्य के रूप में आपने पूरी वैदिक परंपरा को आत्मसात कर कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रणयन किया है।

सीधे और सरल लेकिन मर्यादाओं के लिए प्रतिबद्ध गोकुलोत्सव महाराज सदैव अपनी निर्धारित वेशभूषा पहनते हैं सफेद धोती, अंगरखा (बंडा) और ऊपरना पहनते हैं। विशेष पर्व पर राजकीय वेशभूषा धारण करते हैं और कभी-कभी केसरिया रंग के वस्त्र भी धारण करते हैं। मस्तक पर हमेशा चंदन और कुमकुम का ऊर्ध्वपुंड तिलक लगाते हैं। पलकों पर भी चंदन लगाते हैं। गले में तुलसी की माला वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत धारण करना उनकी मर्यादा का प्रमुख हिस्सा है। सुबह ब्रह्म मुहूर्त में उठकर यम, नियम, प्राणायाम के बाद संगीत साधना, शाकाहारी भगवान की भोजन प्रसादी और ठाकुर जी की नित्य सेवा यह उनका जीवन क्रम है। गोकुलोत्सव जी महाराज शास्त्रीय परंपरा के गायक हैं । अपनी पत्नी पुत्र और पौत्र के साथ सुखद जीवन व्यतीत कर रहे हैं और जब भी कोई उनसे मिलने आता है तो बड़ी सरलता से और आत्मीयता के साथ मिलते हैं। उनके पास कहने को बहुत कुछ है। सीखने वाले का कटोरा कितना खाली है यह उस पर निर्भर करता है।

अमृत खाली बर्तन में ही पाया जा सकता है। श्री अश्विनी कुमार दुबे के द्वारा रचित यह पुस्तक वास्तव में शास्त्रीय संगीत का अमृत पान करने के लिए पढ़ी जाने वाली पुस्तक है। इसके माध्यम से मालवा की शास्त्रीय संगीत की परंपरा का एक पूरा कालखंड हमारे सामने आकर खड़ा हो जाता है। इस श्रम साध्य कार्य के लिए लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

■

पुस्तक समीक्षा

और इस बार जब तुम नदी बनीं

– अलकनन्दा साने

पुस्तक विवरण–

कृति	:	और इस बार जब तुम नदी बनीं
लेखक	:	शिशिर उपाध्याय
प्रकाशक	:	शिवना प्रकाशन, सीहोर
मूल्य	:	₹185/–
प्रकाशन वर्ष	:	2022

हिन्दी और निमाड़ी में समान प्रभुत्व रखने वाले कालमुखी (जि. खण्डवा) के शिशिर उपाध्याय का पाँचवाँ कविता संग्रह ''और इस बार जब तुम नदी बनीं'' मेरे सामने है। इसका प्रकाशन 2022 में हुआ और उसके तुरंत बाद ही यह मेरे हाथ में आया।

पुस्तक के शीर्षक में वर्णित नदी पर आरंभिक 17 कविताएँ हैं, जो कवि और कवि मन का नदी से जुड़ाव व्यक्त करती हैं। पहली ही कविता सीधे नदी किनारे ले जाती है।

नदी को रेत
होता देख
मैं पानी– पानी हो गया
मैं बादल
और क्या करता

कवि के अंतस में बह रही नदी सागर से मिलना चाहती है पर वह विकल है कि

उसे बहना है, सींचना है फसलों को
बुझाना है प्यास प्राणियों की
जंगलों की
और डूबना है
सागर के अथाह प्यार में

''छलांग'' शीर्षक की यह कविता नदी के उद्गम को एक अलग आयाम देती है। इसी तरह ''बलात'' में बाँध का बिम्ब असहज कर देता है। मन में कितनी सारी घटनाएं कौंध जाती हैं। नदी पर लिखीं इन कविताओं में अधिकांश छोटी हैं। ''परछाई'' में मात्र बारह शब्द हैं, लेकिन कविता बेहद प्रभावित करती है।

''धोबी'' कविता में कपड़ों पर प्रेस करने की क्रिया को प्रतीक बनाकर लिखे ये शब्द पढ़कर अनायास ''वाह'' निकलता है

स्त्री जरूरी है
जिंदगी के तेढ़ेपन को
सीधा करने के लिए
गर्म दबाव के साथ
समय-समय पर ...

''पूर्ण स्त्री'' की दुखद परिभाषा का वास्तविक वर्णन एक पुरुष कवि द्वारा किया जाना वास्तव में बहुत स्पृहणीय है। स्त्री के प्रति यदि ऐसी समानुभूति व्यापक हो जाय तो समाज का दृश्य न केवल बदल जायेगा वर्न अत्यधिक सुखद हो जायेगा। स्त्री की पूरी दिनचर्या के वर्णन के बाद आती हैं ये पँक्तियाँ --

और देर रात
वह अधेड व्यक्ति
थकी हारी उस नारी में
ढूँढता है
एक पूर्ण स्त्री

''गाँठ'' की परिभाषा पढ़ते हुए मन रससिक्त हो जाता है, तो ''श्रम – साधिकाएँ'' जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि इस सूक्ती को सार्थ करती है। ''ड्यूटी'' ऋतु परिवर्तन को लेकर टेसू और

गुलमोहर का मोहक संवाद लिये एक अलहदा कविता है, मानो दोनों कामगार हैं। इसी तरह ''सूरजकुमार'' में सूरज की दिहाडी मजदूरी एक अलग ही सुगंध लेकर आती है। इसी क्रम में ''इंदौरी गरीब सूरज'' पूरे इंदौर की सैर कराता है। ''देर रात'' भी ऐसी ही कविता है जो अ-जीवितों का वार्तालाप सुनती है। ''सहानुभूति'' बेहद मार्मिक और अत्यंत संवेदनशील कविता है।

लगभग सभी कविताओं में प्रकृति साथ-साथ चलती है। भिन्न-भिन्न कविताओं में नदी, सूरज, हवा, बदली, फूल-पौधे, खेत, फसल, ऋतुओं से बात करती स्त्री पञ्च महाभूतों से विनती करती है कि ''अगर दे सको तो दे देना'' यह कुछ लम्बी कविता है,जिसे स्वयं पढ़कर रसास्वादन करना बेहतर होगा।

आजकल संतान का घर से दूर रहना आम हो गया है, लेकिन उनकी अनेक वस्तुएँ, स्मृतियाँ पीछे छूट जाती हैं और बरबस पिता के मुँह से निकल पड़ता है -

तेरी अमोल दौलत हर साल
धूप दिखाकर
मैं वापस
काँच की अलमारी में रख देता हूँ

इन पँक्तियों में काँच की अलमारी ये शब्द कोमल रिश्ते को लेकर एक अलग तरह की संवेदना जगाते हैं। इसका एक दूसरा पहलू भी है। शहर गया व्यक्ति गाँव को पूरी तरह से नहीं छोड़ पाता है। वह जब भी गाँव छोड़कर शहर लौटता है तब उसे अनुभव होता है कि -

पूरा कभी नहीं लौटा शहर
पक्का पूछ लेना महुवे से
आज भी टप - टप रोया है
मेरे जाने पर
और टेसू भी बिखरा है लाल-लाल
आँखों से ...

''बिगड़े हुए लड़के ...'' बिगड़े और सुधरे हुए लड़कों पर एक शानदार कविता है, जो सच्चाई और दिखावे को परिलक्षित करती है। ''नश्चिन्त हैं फूल'' जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण लेकर आती है -

अपने कण्ठ में सुई
चुभने के बाद भी फूल खुश हैं
कि जीतनेवाले के हार का अंश हैं
बस इसी आश पर निर्भर
फूल और माली का वंश है

लगभग हर काव्यकर्मी माँ पर कविता लिखता है। शिशिर जी ने भी लिखी है और उसका ''वो यहीं कहीं है'' यह शीर्षक ही हम सब के मन की बात कह जाता है। ''कविता'' में कुछ ही पँक्तियों में कविता की बेहतरीन परिभाषा है, वहीं ''आम आदमी की कविता'' में व्यंग्य बहुत गहरे समाया हुआ है। संग्रह की अंतिम कविता ''मुखौटे'' मनुष्य जीवन का सार बता जाती है।

अधिकांश कविताओं में अतीत पुरानी यादों के साथ समाया हुआ है। एक तरल काव्य संग्रह में तेढ़ेपन, तुम्हे, अल्हढ़, आँखे, ढोंक, रेखा सी जैसे कुछ मुद्रण दोष हैं, जो पढ़ते समय व्यवधान उत्पन्न करते हैं। इसका दायित्त्व प्रकाशक का भी होता है। मुखपृष्ठ आकर्षक है और सौ से अधिक उत्कृष्ट कविताओं का मूल्य रू. 185/- अधिक नहीं है। शिवना प्रकाशन की यह पुस्तक खरीदकर पढ़ी जानी चाहिए। अगली साहित्यिक यात्रा के लिए शिशिर उपाध्याय जी को आत्मीय शुभकामनाएँ।

संपर्क- डी 509, ग्रीन वैली अपार्टमेंट्स, भारत पेट्रोल पंप के सामने,
कनाडिया मार्ग, इंदौर - 452016
मो.- 9826059934

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

- संपादक

पुस्तक समीक्षा

तीसरी लहर का कहर

– डॉ. अरूण कुमार वर्मा

पुस्तक विवरण–

कृति	:	तीसरी लहर
लेखक	:	अरूण कुमार सिन्हा
प्रकाशक	:	आदर्श प्रकाशन, एच–16/325, संगम विहार, नई दिल्ली
मूल्य	:	₹350/–
प्रकाशन वर्ष	:	2022

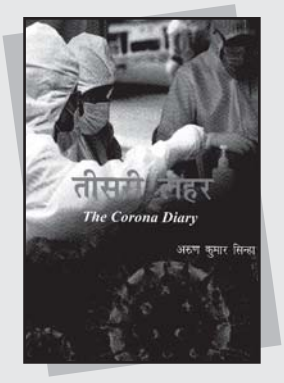

तीसरी लहर' रिपोर्ताज शैली में लिखी गई कोरोना पर विस्तृत रिपोर्ट है। आदर्श प्रकाशन, संगम विहार नई दिल्ली से इसका प्रकाशन 2022 में हुआ। इससे पूर्व में इन्होंने 'इस सुबह की रात नहीं' लिखकर पहली और दूसरी लहर पर विस्तृत आख्यान प्रस्तुत किया है। इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी त्रासदी जिसमें सम्पूर्ण विश्व को हिला के रख दिया। धीरे–धीरे समय बीतता जाता है। बड़ी सी बड़ी त्रासदी को हम भूल कर आगे बढ़े हैं। मानव जीवन के लिए यह अच्छा भी है परंतु उन घटनाओं की चश्मदीद गवाह होती हैं ये किताब जो उन दस्तावेजों को संजोकर रखती हैं। अल्बर्ट कामू की पुस्तक 'प्लेग' जैसे 1918 की त्रासदी को संजोकर रखी है उसी दिशा में कोरोना की भीषण त्रासदी पर सिन्हा जी की बहुत पैनी नजर है। दोनों किताबों के द्वारा इन्होंने कोरोना पर इतना लिखा है कि शायद ही कोई लिखा होगा। इनकी लेखन शैली की विशेषता यह है कि इन्होंने कोरोना से जन जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को तो दर्शाया ही है साथ में उसके बचाव, चिकित्सकीय जानकारी–सुझाव तथा उसके वैश्विक डेटा को भी पाठकों से साझा करने का सफल कार्य किया है।

कोरोना की त्रासदी से हम सब ने किसी न किसी रूप में अपनों को खोया है। परिवार के अलगाव के दर्द को झेला है। खाने की वस्तुएं, डॉक्टर, दवा और आक्सीजन की समस्या को जिया है। एक बंद कमरे में टी वी के डरावने दृश्य के साथ भयावह रातें बिताई हैं। वह ऐसा समय था जिसे सोच कर कोई भी व्यक्ति सिहर उठता है। लेखक ने वर्तमान के दर्द को तो इस पुस्तक में घोला है साथ ही भूतकाल में आई महामारियों का डाटा भी प्रस्तुत किया है।

इसका उदाहरण देखिए–

महामारी	समय	कुल मौतें
एंटोनाईन प्लेग	160 A.D. से.180 A.D.	50 लाख
जापानी स्मॉल पाक्स	735 A.D. से 787 A.D.	10 लाख
जस्टोनियन प्लेग	541 A.D. से 544 A.D.	05 लाख
ब्लैक डेथ	1347 A.D. से 1551 A.D.	20 करोड़
स्मॉल पाक्स	1400 A.D. से 2000 A.D.	66 करोड़
ग्रेट प्लेग ऑफ लंडन		
यलो फीवर	1750 A.D. से 1820 A.D.	2 लाख
बर्ड प्लेग	1866 A.D. से 1892 A.D.	2 करोड़
स्पैनिस फ्लू	1918 A.D. से 1921 A.D.	05 करोड़
एच.आई.वी.एड्स	1981 A.D. से 2000 A.D.	3.5 करोड़

'तीसरी लहर' पुस्तक में लेखक ऐसे तिराहे पर खड़ा है जहां से इस नवसर संसार में अहं के लिए लड़ते रूस और यूक्रेन की युद्ध की विभीषिका को लेकर चिंतित है वहीं दूसरी ओर अपनी जिजीविषा, अदम्य उत्साह तथा साहित्य सृजन को पिपासा और तीसरा मानव त्रासदी की तीसरी लहर के साथ आगे बढ़ रहा है। वह समस्याओं से चिंतित ही नहीं एक कुशल रिपोर्टर की तरह देश तथा विश्व में घटित हो रही तीसरी लहर पर नजर बनाए हैं। प्रस्तुत पुस्तक

में भारतीय आकड़ों के साथ-साथ वैश्विक आकाड़ा भी है। लेखक वृतांतों के बीच कविताओं के द्वारा मार्मिक क्षण को अभिव्यक्ति दी है जो पुस्तक की पठनीयता को और अधिक बढ़ा देता है।

विवेच्य पुस्तक कोरोना की त्रासदी से जन जीवन की स्थिति-परिस्थिति को बहुत ही संजीदगी से घटित घटनाओं को उकेरने का कार्य करती है। विश्व का अधिकांश हिस्से का समय जैसे रूक सा गया था। यदि कोई दो दिन के लिए भी कहीं गया था वहीं फंस गया। आवागमन के अभाव में जन जीवन कैसा हो सकता है जो हमारी कल्पना से परे था उस दृश्य के हम सब साक्षी हैं तथा यह पुस्तक एक-एक घटना क्रम को इतने व्यवस्थित तरीके से संजोयी है जैसे तहखाने में परत दर परत तह करके रखे गए कपड़े। पुस्तक को पढ़ने पर उस समय की घटनाएं मानस मे तैरने लगती ह। पुस्तक की एक विशेषता यह है कि यह हमें महामारी की विभीषिका से डराती नहीं बल्कि उसक उपचारात्मक पहलू को भी हमारे समक्ष रखती है। लेखक बीच-बीच में स्वरचित कविताओं के माध्यम से दृश्यों की जीवंता को और संवेदनशील बना दिया है जिसके कुछ उदाहरण देखिए-

कोई भी उनकी राह न देखे
और आँख बिछाए न कोई
कोई भी उनके दर्द में न तड़पा
आँख किसी की भी न रोई
कौन कहे अब सो जा
कौन कहे उठ जाग
हारे हुए प्रवासी है ये
जिनके हारे हुए हैं भाग
इनके दर्द को समझे कौन
और पूछे कौन इनकी बात
सब के शहर में जगमग जगमग
और इनके शहर में आधी रात

'तीसरी लहर' पुस्तक कल्पनाओं पर आधारित न होकर तथ्यों तथा आकड़ों पर आधारित है। लेखक ने जहाँ एक ओर कोरोना के नये वैरियंट की जानकारी दी है वहीं उसके अलग-अलग लक्षणों को विस्तार से बताया है। इसमें आकड़े डब्लू. एच.ओ. तथा आई.सी.एम. आर. एवं एम्स के विशेषज्ञों से लिए गए है। जो भी उपचारात्मक सलाह है वह विशेषज्ञों के द्वारा प्रमाणित हैं। कोरोना के दौरान साहित्य जगत में बहुत सारी कहानियाँ, कविताएं, रिर्पोत्ताज तथा उपन्यास लिखे गए परंतु इतना विस्तार से विषय वस्तु को संग्रहित करने का दुर्लभ कार्य सिन्हा जी ने किया है।

घटनाओं की तारतम्यता और सपाट बयानी सिन्हा जी के लेखन की विशेषता है। घटनाओं पर शोधपरक दृष्टि रखते हुए तथ्यों को सामने लान का कार्य इनके द्वारा इस पुस्तक में किया गया है। कोरोना के तथ्यों को सामने लाने की दिशा में यह पुस्तक बहुत महत्वपूर्ण है। बहुत सारी अफवाहों एवं गलत धारणाओं के बीच सच को जन मानस के सामने लाने का कार्य इस पुस्तक के माध्यम से किया गया है। इसका उदाहरण इस पुस्तक से देखिए-

''आई.आई.टी. कानपुर के प्रोफेसर मनीन्द्र अग्रवाल ने बताया कि फरवरी के अंत तक भारत में कोविड 19 की मौजूदा लहर लगभग समाप्त हो जायेगी। एक नजर ताजा आंकडों पर डालें-

13 जनवरी 242202, 14 जनवरी 268833, 15 जनवरी 271202, 16 फरवरी से नये मामलों में गिरावट देखने को मिली।''

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक का शायराना अंदाज भी देखने मो मिलता है। जो इनकी घटनाओं को बयां करने की शैली को और आकर्षक बन देती है। इसका एक उदाहरण देखिए-

''मुझे तकाजा है कि वो बुलाए
उसे जिद है कि मैं पुकारूं
खुले दरीचों के पीछे से दो आंखें झांकती हैं
अभी तक मेरे इंतजार में वो जागती है।''

निष्कर्षत: सिन्हा जी की पुस्तक ''तीसरी लहर'' तथा इसके पूर्व लिखी गई पुस्तक ''इस सुबह की रात नहीं'' दोनों को मिला दिया जाय तो कोरोना पर एक मुकम्मल जानकारी है। इसमें सिर्फ भारतीय डेटा को नहीं बल्कि वैश्विक डेटा को प्रस्तुत किया गया है। महामारी के लक्षण, निदान, कोरोना के बदलते रूप आदि की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गयी है। प्रस्तुत पुस्तक आत्मीय की तरह अपनों के गम से दुखी है, जागरूक नागरिक की तरह महामारी से बचाव के तरीकों से पाठकों को रूबरू कराती है तथा एक डॉक्टर की तरह महामारी से बचाव के तरीकों और उपचार की जानकारी देती है। इस महामारी पर बहुत पुस्तक आई हैं परंतु इतनी समग्रता से शायद ही किसी पुस्तक में तथ्यों को संकलित किया गया है जितना इस पुस्तक में हुआ है। भूलने के क्रम में जब हम सब कुछ भूल चुके होंगे, आज जो प्रत्यक्षदर्शी हैं आने वाले समय में जब अपने सफर पूरे कर चुके होंगे, जब इस त्रासदी पर प्रकाश डालने वाला नहीं होगा तब यह पुस्तक महत्वपूर्ण में पूर्ण साक्ष्य के रूप में हमारे साथ होगी और तीसरी का कहर आने वाली पीढ़ियों को सुनाती रहेगी।

संपर्क -बेलहरामऊ,राजाबाजार-जौनपुर(यू.पी.)-222125
संप्रति-प्रवक्ता(हिन्दी) जवाहर नवोदय विद्यालय, पदमसी, मंडला (स.प्र.)-481661, संपर्क- 9754128757

■

पुस्तक समीक्षा

समय से परे

– डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

पुस्तक विवरण–

कृति	:	समय से परे (स्वर–छंदों की यात्रा)
लेखक	:	प्रो. सी. एल. दास (सरोद वादक एवं संगीत इतिहासकार)
प्रकाशक	:	कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
मूल्य	:	₹850/–
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2023

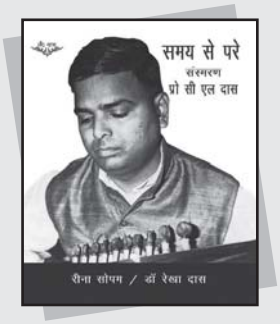

प्रस्तुत पुस्तक पटना (बिहार) की सांस्कृतिक–यात्रा का एक ऐसा दस्तावेज है, जहाँ भारत रत्न पंडित रविशंकर और पंडित भीमसेन जोशी से लेकर ग़ज़ल साम्राज्ञी बेग़म अख़्तर, बिहार की लोक गायिका विंध्यवासिनी देवी और पाकिस्तान जा बसी ख़्याल गायिका रौशन आरा बेग़म तक की यादें उपलब्ध हैं।

पटना के लब्ध प्रतिष्ठित सरोद वादक तथा संगीत इतिहासकार, प्रो. सी. एल. दास द्वारा बिहार (विशेष रूप से पटना) की सांस्कृतिक–यात्रा पर लिखित एक संस्मरणात्मक पुस्तक है, 'समय से परे' (स्वर – छंदों की यात्रा)।

कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली से प्रकाशित यह किताब, दरअसल संगीत विद्वान् प्रो. सी. एल. दास के पटना सहित पूरे बिहार के सांस्कृतिक परिदृश्य और गतिविधियों से जुड़ी स्मृतियों का एक संकलन है।

प्रो. सी. एल. दास एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। देश की आज़ादी के बाद के वर्षों में बिहार में जो सांस्कृतिक परिदृश्य था और प्रदेश में संगीत–परंपरा तथा संगीतकारों की जो दशा थी, उसे एक दिशा देने में उन्होंने महती भूमिका निभाई थी।

प्रो. दास अंग्रेज़ी साहित्य के अध्यापक रहे, लेकिन उनके व्यक्तित्व का विस्तार कई क्षेत्रों में था। वे सरोद वादक पद्म विभूषण उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ के शिष्य थे और प्रो. दास के बहाने ही मैहर घराने की संगीत–परंपरा बिहार आई। साथ ही, बिहार में कला–लेखन की नींव में रहे थे वो। अपने कॉलेज के दिनों से ही उन्होंने कला–लेखन के क्षेत्र में प्रवेश कर लिया था। हाथरस, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'संगीत' और भोपाल से 'संगीत कला विहार' जैसी पत्रिकाएं वे मंगाते थे और उनका गंभीरतापूर्वक अध्ययन करते थे। इन पुस्तकों के पार्सल गांव से 25 किमी दूर भारत–नेपाल सीमा पर पोस्ट कुनौली बाज़ार, तत्कालीन ज़िला भागलपुर से मंगवाए जाते थे। इन्हीं पुस्तकों या पत्रिकाओं के द्वारा ही उनको हारमोनियम के बारे में भी जानकारी मिली थी। उन्होंने 1950 के दशक में ही आकाशवाणी के अखिल भारतीय संगीत–समारोह की समीक्षा तथा बिहार तथा देश के अन्य संगीतकारों पर फीचर लिखना शुरू कर दिया था। 1960 के दशक से उन्होंने बिहार के समाचार–पत्रों में कला–लेखन की शुरुआत की।

साथ ही, वे एक कुशल संगीत–समारोह आयोजक भी थे और एक उदारमना गुरु भी। इन विविध भूमिकाओं को जीते–निभाते, प्रो. सी. एल. दास ने पटना और बिहार के अन्य शहरों में शास्त्रीय संगीत–परंपरा और संगीतकारों की जो परिस्थिति देखी, और यहाँ के सांस्कृतिक गतिविधियाँ को जैसा उन्होंने देखा–सुना, किया और जिया, उसे उसी रूप में पाठकों से साझा किया है इस किताब में। वैसे इस पूरे संकलन का नायक मूलत: पटना है जिसके इर्द–गिर्द घूमती हैं शास्त्रीय संगीत के दिग्गज कलाकारों की गतिविधियां। यहां ग़ज़ल साम्राज्ञी

बेग़म अख़्तर की पटना और पटना वासियों से जुड़ी बहुत ही रोचक घटनाएँ भी हैं और दिग्गज ख़्याल गायिका रौशन आरा बेग़म

के पटना सिटी के कचौरी गली में बिताए बचपन की बातें भी।

पंडित रवि शंकर के पटना में बिताए दिनों की यादें भी हैं। बल्कि एक पूरा चैप्टर ही है पटना से उनके प्रेम-लगाव पर।

इस किताब में पद्म विभूषण उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ के पटना प्रवास की विस्तृत चर्चा है। उनपर आधारित चैप्टर में कई दुर्लभ तस्वीरें भी हैं। साथ ही, बिहार के ध्रुपद गायक पंडित रामचतुर मल्लिक से लेकर भारत रत्न पंडित भीमसेन जोशी की पटना से जुड़ी यादें भी हैं। जिन्होंने पटना में होने वाले दशहरा संगीत-समारोह को देखा होगा या उसकी चर्चा सुनी होगी, उनके लिए काफ़ी रोचक होगी यह किताब। पटना के उन आयोजनों की चर्चा विस्तार से की गई है यहाँ और उसकी बहुत तस्वीरें भी उपलब्ध हैं यहाँ।

आरंभ के कुछ चैप्टर्स में दरभंगा राज के अनन्य संगीत-प्रेम और कला-संरक्षण पर भी लंबी चर्चा है।

पूरे तौर पर कहें तो यह किताब बिहार की सांस्कृतिक-यात्रा के उन अनछुए पहलुओं का दस्तावेजीकरण है जिसने बिहार को एक सांस्कृतिक पहचान दिलाई थी और जिसकी नींव पर आज भी बिहार अपनी सांस्कृतिक साख बनाए हुए है।

इस किताब में देश के दिग्गज कलाकारों और संगीत-समारोहों की दुर्लभ तस्वीरें हैं। लगभग सभी तस्वीरें प्रो. सी. एल. दास द्वारा ही ली गई हैं। श्री दास एक शौक़िया फोटोग्राफ़र थे, लेकिन उनके द्वारा ली गई तस्वीरें आज आज़ादी के बाद के वर्षों में बिहार में सांस्कृतिक परिदृश्य से रू-ब-रू कराने का एक प्रामाणिक ज़रिया बन गईं हैं।

इस किताब को बिहार, विशेष रूप से पटना के सांस्कृतिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण और मौलिक स्रोत माना जा सकता है। युवा पीढ़ी के लिए विशेष ही महत्त्वपूर्ण है यह किताब। यहाँ उन्हें बिहार और पटना की संस्कृति के बारे में विस्तृत जानकारी मिलेगी।

यह किताब 'समय से परे (स्वर - छंदों की यात्रा) बिहार की सांस्कृतिक-यात्रा का दस्तावेजीकरण है। दरअसल बिहार के इंटैंजिबल हेरिटेज के जिन पहलुओं की चर्चा यहाँ की गई है, वह कहीं और शायद ही लिखित रूप में उपलब्ध हो। बहुत कम लिखा गया है उन विषयों और व्यक्तित्व पर। इस किताब के माध्यम से प्रो. सी. एल. दास ने बिहार की उस सांस्कृतिक धरोहर को संभाला और सहेज कर महत्वपूर्ण काम किया।

पूरी ही पुस्तक आर्ट पेपर पर छपी है और हार्ड बाउंड है। संपादन की दृष्टि से पुस्तक बहुत अच्छी है। कवर पेज़ का ले आउट और पूरी क़िताब की डिजाइनिंग भी मनभावन है। कुल मिलाकर पुस्तक संग्रहणीय बन पड़ी है जिसके लिए संपादिका द्वय रीना सोपम जी और डॉ. रेखा दास जी तथा ले आउट और डिजाइनिंग के लिए श्यामल दास जी साधुवाद के पात्र हैं।

- समीक्षक संगीत पत्रिका के संपादक है।

कला समय

आगामी अंक
अगस्त-सितम्बर 2023

लोक संस्कृति में अद्वैत विशेषांक

विशेषांक हेतु आलेख, रचनाएँ, छायाचित्र आमंत्रित है।

अतिथि संपादक द्वय
आचार्य पं. दुर्गाचरण शुक्ल
एवं
प्रोफेसर डॉ. सरोज गुप्ता

आवरण चित्रकार

इस अंक के आवरण चित्रकार विजय एम ढोरे

हैदराबाद के कलाकार विजय एम ढोरे अपनी ही शैली के अप्रतिम चित्रकार हैं। वे ऐतिहासिक इमारतों की स्वप्निल छवियों को फलक पर साकार करते हैं । साथ ही रंगों के विशिष्ट अनुप्रयोग की एक ऐसी छटा सामने लाते हैं, जो देर तक दर्शक की पलकों पर ठहरी रहती है । उनकी चित्र योजना नीरव आकाश में आद्य-बिंबों की सृष्टि है । रूप से अरूप तक की यात्रा भी। खास तरह से चित्र बनाने की उनकी शैली मूर्त- अमूर्त की निर्जरा सी दीख पड़ती है। जो दर्शक को अपने में डुबो ले जाती है। विजय ढोरे समकालीन कला के परिदृश्य में कबीर जमात के अलमस्त अंदाज वाले कलाकार हैं। भारत भर के कलाकारों से उनका याराना है। बेहद सरल और अपने विचारों में पूरी तरह स्पष्ट। उनके जीने का अंदाज भी निराला है। जब वह मित्रों के साथ होंगे तो इतने खिलंदड़ कि कोई उनसे दूर जाने का नहीं सोचता। और जब चित्र बना रहे होते हैं तो उस सघन मौन में डूबे साधू की तरह दूर एकांत के प्रवासी हो जाते हैं । एक ही मुलाकात में कोई भी उनके दिल का मुरीद हो जाता है।

विजय ढोरे की कला का महत्वपूर्ण पहलू अआद्य-छवियों का संयोजन है। यह संयोजन अनायास और सप्रयास दोनों तरह का किया गया है। उनकी कृतियों में आकार अपने आपको अवकाश में विलीन करते जाते हैं, कहीं वे सुघड़ उपस्थिति देते हैं तो कहीं, धुंधले होते हुए शून्य अस्तित्व से एकाकार कर लेते हैं। इस मनोरम संयोजन में विजय ढोरे द्वारा प्रयोग में लाए गए टेक्स्चर्स एक जादुई प्रभाव छोड़ते हैं। वस्तुत: यह कलाकार की लंबी कला यात्रा का परिणाम है। चित्र में इसी कारण एक परिपक्वता और संतुलन का दर्शन होता है।

प्रस्तुत आवरण चित्र पीत आभा में किसी रहस्य की सृष्टि करता है। एक ऐसा रहस्य जो मन को धवल प्रकाशमान गुहा से गुजारते हुए कहीं पार ले जाता है। और तय नहीं है कि चित्र में प्रवेश करने पर दर्शक कहां जाएगा। बस ! एक यात्रा के पथ-चिन्ह जहां से जाया जाता जाता है कहीं पार। किसी अपने ही लोक में। जो आलोक से सराबोर है। चित्र में कहीं रंग और कहीं पोत के आघात अविराम प्रकृति के अबूझे पक्ष सामने रखते हैं जिसमें अनायास ही प्रेक्षक इस पार से उस पार तक विचरण करता रहता है।

किसी राष्ट्र की संस्कृति अपने धर्म, दर्शन, कला एवं मानसिक चिन्तन के स्वरूप को व्यक्त करती है। ''मानव जिस रूप में अपने धर्म दर्शन का विकास करता है, दर्शनशास्त्र के रूप में चिंतन करता है, साहित्य एवं कला का जिस प्रकार सृजन करता है और अपने समष्टिगत जीवन को अधिक सुखमय बनाने के लिए शासन-प्रबन्ध और आर्थिक स्थिति को विकसित करता है, उन सबका समावेश 'संस्कृति' में होता है।''

- डॉ. राजकिशोर सिंह एवं डॉ. (श्रीमती) उषा यादव

(द्वय)

समिति शताब्दी अलंकरण समारोह से वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. देवेन्द्र दीपक और डॉ. अग्निशेखर सम्मानित

श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति परिवार राष्ट्रभाषा हिंदी को मिलावटखोरी से बचाये - विनय सहस्त्रबुद्धे
डॉ. देवेन्द्र दीपक और डॉ. अग्निशेखर के सम्मान से श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति की ऊँचाई और बढ़ गई-श्रीमती सुमित्रा महाजन
पाठक से सार्थक संवाद है मेरा लेखन - डॉ. देवेन्द्र दीपक
शरणार्थी कश्मीरी विस्थापित नहीं निर्वासित है - डॉ. अग्निशेखर

इंदौर। एक गरिमामयी समारोह में पूर्व लोकसभा अध्यक्ष पद्मभूषण श्रीमती सुमित्रा महाजन और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद नई दिल्ली के अध्यक्ष विनय सहस्त्रबुद्धे ने वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. देवेन्द्र दीपक और डॉ. अग्निशेखर को समिति शताब्दी अलंकरण सम्मान से सम्मानित किया। सम्मान में शॉल, श्रीफल, अभिनंदन पत्र और एक लाख रु. का चेक दोनों को प्रदान किया गया, यह आयोजन श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति के सभागार में किया गया, यह जानकारी समिति के प्रधानमंत्री अरविंद जवलेकर, और प्रचार मंत्री हरेराम वाजपेयी ने दी। इस मौके पर पूर्व लोकसभा अध्यक्ष श्रीमती सुमित्रा महाजन ने कहा कि डॉ. देवेन्द्र दीपक और डॉ. अग्निशेखर के सम्मान से श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति के व्यासपीठ की ऊँचाई आज और बढ़ गई है। दोनों ही साहित्यकार का जीवन साहित्य को समर्पित हैं। डॉ. अग्निशेखर का साहित्य जहां कश्मीरियत के दर्द को बयां करता है तो वहीं डॉ. देवेन्द्र दीपक का साहित्य भारतीयता को दृढ़ता के साथ प्रमाणित करता है। ऐसे ही साहित्यकारों का सम्मान होना चाहिये जो समाज को सही दिशा देने के साथ प्रेरणा देते है। अपने संबोधन में विनय सहस्त्रबुद्धे ने बेबाकी से कहा कि श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति परिवार राष्ट्रभाषा हिंदी को मिलावटखोरी से बचाये क्योंकि फिल्मों, टी.वी. धारावाहिकों व अन्यान्य माध्यमों में राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ विदेशी शब्दों का अधिक प्रयोग हो रहा है, जिसको रोकना जरुरी है। हिंदी भाषा में कई पर्यायवाची शब्द है, लेकिन हम उनके प्रयोग के बजाय अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग करते है, इससे हिन्दी की प्रतिष्ठा को आघात पहुंच रहा है। हिन्दी भाव भाषा है, जिसे विश्व भाषा बनाने की आवश्यकता है। जब चिकित्सा, शिक्षा हिन्दी भाषा में पढ़ाई जा रही हो और हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी व्हाईट हाउस में अमरीकी राष्ट्रपति जो. बाइडेन के सामने हिन्दी में अपना संबोधन दे रहे है, वहाँ हम हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों का घालमेल कर रहे है, इस मिलावटखोरी को रोकना बहुत जरुरी है। जब एक पुर्तगाल का नेता संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी बात पुर्तगाली भाषा में रखता है जबकि पुर्तगाल बहुत छोटा देश है और इस पुर्तगाली भाषा को बोलने वाले भी कम है। जब तक हम भारतीय अपनी भाषा से

प्रेम नहीं करेंगे तो हिन्दी भाषा में बोलने वाले विद्वानों को प्रतिष्ठा नहीं दिलायेंगे तब तक हिन्दी का मान-सम्मान नहीं बढ़ेगा। केवल हिन्दी ही नहीं, तमिल, तेलुगु, मराठी, बांग्ला, मालवी आदि भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी भाषा का घालमेल हो रहा है। इस पर भी गंभीर चिंतन जरुरी है। श्री विनय सहस्त्रबुद्धे ने आगे कहा कि सोशल मीडिया, ब्लॉग, फेसबुक, यूट्यूब चैनल आदि पर हिंदी भाषा में बहुत कुछ लिखा जा रहा है, जिस पर हमारा कम ध्यान है। कई लोग

फेसबुक पर रोजाना हिन्दी में पोस्ट करते है तो कुछ बड़े-बड़े ब्लॉग हिन्दी में लिखते है। अत: श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति परिवार को चाहिये कि वह फेसबुक साहित्य सम्मेलन भी कराये। अपने सम्मान के प्रत्युत्तर में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. देवेन्द्र दीपक ने कहा कि असंगत के प्रति विधायक आक्रोश की सहज और सार्थक अभिव्यक्ति का लोक-संवादी दायित्वबोधी स्वर मेरे रचनाकार की पहचान है। मेरा प्रत्येक शब्द कर्मानुमोदित है। मैंने जो कहा और लिखा, वह मेरे अंतरंग और व्यवहार का अविच्छित पक्ष है। उन्होने आगे कहा कि भारत मूल का होना एक बात है, भारत के मूल और मूल्यों से संप्रक्ति अलग बात है, जिसकी वैचारिकी के सूचकांक विदेशी हों, वह लेखक भारतीय लेखक कैसे हो सकता है। अपने सम्मान के प्रतिउत्तर में जम्मू के लेखक डॉ. अग्निशेखर ने कहा कि यह सम्मान मेरा नहीं निर्वासित कश्मीरियां की भावनाओं का सम्मान है। मैंने अपने साहित्य में शरणार्थी कश्मीरियत के दर्द को पूरी ताकत से बयां किया है। कश्मीर भारत की आत्मा है, वह अजर, अमर है, इतिहास की चेतना है। कश्मीर से पलायन लोग विस्थापित नहीं है, निर्वासित है।

म.प्र. साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. विकास दवे ने कहा कि डॉ. देवेन्द्र दीपक और डॉ. अग्निशेखर समानधर्मी दोनों ने वैचारिक अनुष्ठान से कभी समझौता नहीं किया। डॉ. अग्निशेखर भोगे हुये यथार्थ का साहित्य चित्रण किया। वहीं डॉ. देवेन्द्र दीपक ने सांस्कृतिक ह्रस का सामना किया।

स्वागत उद्बोधन समिति के प्रधानमंत्री श्री अरविंद जवलेकर ने देते हुए बताया कि वर्ष 2010 से श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति प्रतिवर्ष दो साहित्यकारों को समिति शताब्दी अलंकरण सम्मान प्रदान कर रही है। संयोजक सूर्यकांत नागर ने कहा कि पहले हम चयन समिति के लिये दिल्ली जाते थे अब हमारे तय विद्वानों के द्वारा चयन किया जाता है। अभिनंदन पत्र का वाचन हरेराम वाजपेयी और डॉ. पद्मा सिंह ने किया। आरंभ में सरस्वती वंदना डॉ. दीप्ति गुप्ता ने की। अतिथि स्वागत अरविंद ओझा, घनश्याम यादव, राजेश शर्मा, राकेश शर्मा अर्चना शर्मा ने किया। अतिथियों को प्रतीक चिन्ह डॉ. अंतरा करवडे, अरविंद ओझा, टीनू जैन, सदाशिव कौतुक ने दिये। कार्यक्रम का संचालन संजय पटेल ने किया और आभार माना पुष्पेन्द्र दुबे ने। इस मौके पर डॉ. पद्मा सिंह की दो पुस्तकों ''खिलेंगे फिर राख के बीच से'' और ''एक सूर्य मेरे भीतर'' अतिथियों ने विमोचन किया। कार्यक्रम में राष्ट्रीय कवि सत्यनारायण सत्तन, रामकिशन सोमानी, प्रवीण जोशी, मदन राणे, रामचंद्र अवस्थी, प्रभु त्रिवेदी, मुकेश तिवारी, डॉ. अर्पण जैन, मुकेश इंदौरी, आशुतोष शुक्ला, वाणी जोशी सहित बड़ी संख्या में गणमान्य उपस्थित थे।

- हरेराम वाजपेयी

वसंत राशिनकर स्मृति अ. भा. सम्मान घोषित

इंदौर । आपले वाचनालय एवं श्री सर्वोत्तम द्वारा उत्कृष्ट मराठी काव्य कृतियों को दिए जाने वाले वसंत राशिनकर स्मृति अखिल भारतीय सम्मानों की घोषणा कर दी गई है।

संस्था सचिव संदीप राशिनकर ने बताया कि देशभर से आई काव्य संग्रहों की प्रविष्टियों में से निर्णायक मंडल ने गुहागर के प्रतिभाशाली कवि बालासाहेब लबडे की कृति एक कैफियत का चयन कविवर्य वसंत राशिनकर स्मृति अ. भा. सम्मान '2022 के लिए किया है। ज्ञान्तव्य है की इसके पूर्व सर्वश्री रविचन्द्र हडसनकर, दासू वैद्य, गीतेश गजानन शिंदे, संजय चौधरी, डॉ. विशाल इंगोले एवं राजू देसले इस प्रतिष्ठित सम्मान से सम्मानित हो चुके है।

उल्लेखनीय काव्य कृतियों को दिए जाने वाले वसंत राशिनकर काव्य साधना अ. भा. सम्मान '2022 के लिए अमरावती के नितीन भट की कृति उन्हात घर माझे, पुणे के शरद कवठेकर की कृति निष्पर्ण वेदना, जयश्री वाघ नाशिक की कृति नीलमोहर, लातूर के भारत सातपुते की कृति सांगना ग आई ?, परभणी के तुकाराम पुंडलिक खिल्लारे की कृति सांजफुले, बारामती के राघव की कृति रातराणी का चयन किया गया है. आपले वाचनालय राजेंद्र नगर में निकट भविष्य में होने वाले गरिमामय समारोह में ये सम्मान प्रदान किये जायेंगे।

- संदीप राशिनकर

समवेत

गुरु-पूर्णिमा पर्व पर शास्त्रीय गायन, वादन, नृत्य की प्रस्तुतियों ने मोहा दर्शकों का मन

डॉ. वर्षा अग्रवाल के संतूर की स्वर-लहरियों से झंकृत हुआ श्री राधा रस मंडप
आस्था गोस्वामी के ख्याल और झूला गायन ने बांधा समां
नयनिका घोष के कथक नृत्य ने किया दर्शकों को भाव विभोर
डॉ. वर्षा, पं.ललित महंत, आस्था और नयनिका को मिला 'श्रीजी नादश्री' सम्मान

बरसाना (मथुरा)। परमावतार भगवान् श्रीकृष्ण की आराध्या श्री राधा रानी की पावन-भूमि गह्वर वन, बरसाना स्थित 'श्री राधा रस मण्डप' में गुरु-पूर्णिमा पर्व पर आयोजित शास्त्रीय गायन, संतूर वादन और कथक नृत्य की ऐसी त्रिवेणी बही जिसमें न केवल बरसानावासी और ब्रजवासियों ने अवगाहन किया बल्कि देश-विदेश से पधारे सैकड़ों शास्त्रीय संगीत-प्रेमी और रसिक-जन ने भी उसका भरपूर आनंद लिया।

कार्यक्रम प्रारंभ होने से पूर्व 'मान मंदिर सेवा संस्थान' के उपाध्यक्ष राधाकांत शास्त्री ने निस्पृह संत श्री रमेश बाबा महाराज के त्यागमयी जीवन की चर्चा करते हुए बताया कि उनकी कृपा से विश्व की सबसे बड़ी श्री माताजी गौशाला और गौ हॉस्पिटल सहित सबसे बड़ा गोबर गैस प्लांट भी यहीं है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष लगभग 15 से 20 हज़ार यात्रियों को नि:शुल्क ब्रज चौरासी कोस की यात्रा भी कराई जाती है। यहां प्रतिदिन दोनों वक्त नि:शुल्क भोजन प्रसादी की भी व्यवस्था है।

समारोह की संयोजिका साध्वी श्रीजी शर्मा ने बताया कि श्री बाबा महाराज के शास्त्रीय संगीत के प्रति विशेष अनुराग को देखते हुए विश्व के सबसे बड़े संगीत विश्वविद्यालय की स्थापना की भी योजना है, किंतु इसका श्रीगणेश 'श्रीजी संगीत महाविद्यालय' स्थापित कर किया जा चुका है जिसमें सैकड़ों साधक बालक-बालिकाओं को देश के सुप्रसिद्ध कलाकार प्रशिक्षण देने हेतु आते हैं।

अब समारोह के संचालन हेतु माइक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं कवि डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' को सौंप दिया जाता है। डॉ. अग्रवाल ने पहले ब्रज भूमि की महत्ता बतलाते हुए श्री रमेश बाबा महाराज द्वारा विगत 70 वर्षों में किए गए त्याग से पुष्पित-पल्लवित गह्वर वन की भूमि में पधारे सभी कलाकारों और उपस्थित दर्शक वृन्द का स्वागत और अभिनंदन करते हुए गुरु-पूर्णिमा की बधाई दी, तदुपरांत सभी कलाकारों का स्वरचित छंदों के माध्यम से जोरदार स्वागत और अभिनंदन किया।

इस समारोह में प्रथम प्रस्तुति उज्जैन से पधारी पद्मश्री पंडित भजन सोपोरी जी की शिष्या और राष्ट्रपति द्वारा फर्स्ट लेडी अवॉर्ड एवं मध्य प्रदेश शासन द्वारा शिखर सम्मान से सम्मानित डॉ. वर्षा अग्रवाल की थी। उन्होंने संतूर पर समयानुकूल राग पूरिया धनाश्री में आलाप-जोड़ और जोड़-आलाप के बाद विलंबित गत प्रस्तुत की, तदुपरान्त एक धमार सुनाकर सभी श्रोताओं की भरपूर तालियां बटोरीं। आपके वादन में सूफियाना घराने की तालीम स्पष्ट झलक रही थी। आपके साथ तबला पर संगति उज्जैन से ही पधारे आपके गुरु पंडित ललित महंत ने की। दोनों गुरु-शिष्या द्वारा अपने-अपने वाद्य पर किए गए सवाल-जवाब और लड़ंत-भिड़ंत ने ऐसा समां बांधा कि दर्शकगण हर करतब पर भरपूर तालियां बजाकर दाद देते रहे।

द्वितीय प्रस्तुति थी, वृंदावन से पधारी पद्मविभूषण गिरिजा देवी जी की शिष्या आस्था गोस्वामी की। उन्होंने पहले राग मियां मल्हार और तीन ताल में निबद्ध मध्य लय में ख्याल 'बिजुरी चमके, बरसे मेहरवा' प्रस्तुत किया, फिर सदारंग विरचित सुप्रसिद्ध ख्याल 'बोले रे पपीहरा' की तान और बोल तानों से सुसज्जित प्रस्तुति की।

तदुपरांत एक झूला गीत गाकर समापन किया। बोल थे –'राधे झूलन पधारौ, झुकि आए बदरा।' कोकिल कंठी आस्था जी की गायकी मंत्रमुग्ध कर देने वाली थी।

आपके साथ तबले पर अत्यंत सधी हुई संगति फर्रुखाबाद घराने के टॉप ग्रेडेड तबला वादक उस्ताद अख़्तर हसन, दिल्ली ने की जबकि हारमोनियम पर कुशलतापूर्वक संगति दे रहे थे गुरुग्राम से पधारे युवा कलाकार कौशिक मित्रा।

तीसरी और अंतिम प्रस्तुति थी, गुरुग्राम से पधारी पद्मविभूषण पंडित बिरजू महाराज जी की शिष्या नयनिका घोष की। आपने पहले महाप्रभु वल्लभाचार्य विरचित 'मधुराष्टकम्' एवं महाकवि सूरदास विरचित पद 'राधे तेरौ वदन बिराजत नीकौ' पर भाव-नृत्य की मनोहारी प्रस्तुतियां दीं और अंत में ताल धमार में विशुद्ध कथक नृत्य की प्रभावी प्रस्तुति देकर उपस्थित सुधी जन एवं दर्शक वृंद की भरपूर तालियां बटोरीं। आपके नृत्य में भक्ति और माधुर्य के साथ अंग, प्रत्यंग और उपांगों का सुंदर समन्वय दर्शनीय था। संचालक डॉ. अग्रवाल द्वारा जब यह बताया गया कि नयनिका जी गंभीर कैंसर से पीड़ित हैं और अब तक 30 कीमो करा चुकी हैं तो दर्शक गण ठगे-से रह गए।

सभी कलाकारों को बाबा महाराज द्वारा पुष्पहार, पटका, मोतीमाल्य, स्मृति-चिह्न और गौशाला की सुगंधित धूपबत्ती और अष्टगंध आदि सामग्री आशीर्वाद स्वरूप प्रदान की गई। इस अवसर पर डॉ. वर्षा अग्रवाल, पंडित ललित महंत, आस्था गोस्वामी और नयनिका घोष को 'श्रीजी नादश्री' सम्मान से भी विभूषित किया गया। दूसरे दिन डॉ. वर्षा अग्रवाल द्वारा गौ माता एवं पर्यावरण पर संतूर की स्वर-लहरियों का सकारात्मक प्रभाव भी दिखाया गया। विभिन्न रागों के माध्यम से उन्होंने सिद्ध किया कि प्रात:काल और सायंकाल के रागों को नियत समय पर सुनाकर गायों को भी स्वस्थ और प्रसन्न रखा जा सकता है। कुल मिलाकर यह आयोजन बेहद सफल रहा जिसकी दूर-दूर तक मुक्त कंठ से सराहना की जा रही है।

डॉ. लक्ष्यराजसिंह मेवाड़ के हाथों डॉ. महेन्द्र भानावत ने ग्रहण किया लोकभूषण सम्मान

उदयपुर। मेवाड़ पूर्व राजघराने के सदस्य डॉ. लक्ष्यराजसिंह मेवाड़ के हाथों प्रख्यात लोकसंस्कृतिविज्ञ डॉ. महेन्द्र भानावत ने 17 जून 2023 को लोकभूषण सम्मान ग्रहण किया। डॉ. भानावत को यह सम्मान उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा लोकसाहित्य एवं लोकपरम्परा से सम्बन्धित भारतीय लोकसाहित्य की विशिष्ट दीर्घकालीन हिन्दी सेवा के लिए दिया गया। डॉ. लक्ष्यराजसिंह ने सम्मान स्वरूप उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान का सम्मान डॉ. भानावत को प्रदान किया, जिसके तहत दो लाख पचास हजार की धनराशि, ताम्रपत्र एवं शॉल भेंट किया।

इस अवसर पर डॉ. लक्ष्यराजसिंह ने कहा कि मुझे प्रसन्नता है कि डॉ. भानावत कई सालों से लगातार भारतीय साहित्य के क्षेत्र में भारतभर में मेवाड़ का नाम रोशन करते आ रहे हैं, जिससे भावी पीढ़ी को जीवंत प्रेरणा मिलती है। महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन ने ही सबसे पहले 1984 में महाराणा सज्जनसिंह पुरस्कार दिया था। तब इस नाम से कोई पुरस्कार नहीं था पर फाउण्डेशन के संस्थापक महाराणा भगवतसिंह मेवाड़ ने डॉ. भानावत को सम्मानित करने के लिए इस पुरस्कार की घोषणा की और पहला पुरस्कार ही इन्हें प्रदान किया गया। मैं डॉ. भानावत के उत्तरोत्तर उत्कर्ष का हार्दिक विश्वासी हूं।

डॉ. भानावत को लोकभूषण सम्मान उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान ने दिया जिसमें दो लाख पचास हजार की धनराशि, ताम्रपत्र एवं शॉल शामिल है। उदयपुर में यह सम्मान मेवाड़ के हाथों डॉ भानावत को प्रदान किया गया।

उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व डॉ. भानावत पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र से ढाई लाख के कोमल कोठारी सम्मान के अलावा विभिन्न संस्था-प्रतिष्ठानों से पांच बार इक्यावन हजार के पुरस्कार से नवाजे जा चुके हैं।

– डॉ. तुक्तक भानावत

साहित्य वाचस्पति डॉ. प्रभुदयाल मीतल की 121वीं जयंती पर किया उनका भावपूर्ण स्मरण

मथुरा। प्रख्यात् साहित्यकार डॉ. प्रभुदयाल मीतल की 121वीं जयंती पर ब्रज साहित्य सम्मेलन का भव्य आयोजन किया गया जिसमें ब्रज क्षेत्र की प्रमुख साहित्यिक विभूतियों द्वारा डॉ. मीतल जी के योगदान पर विचार व्यक्त किए और काव्य पाठ कर उन्हें याद किया गया।

सम्मेलन का उद्घाटन मुख्य अतिथि पद्मश्री मोहनस्वरूप भाटिया और मुख्य वक्ता एवं संचालक डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' द्वारा मीतल जी के चित्र पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन कर किया गया। मीतल परिवार की ओर से उनके पौत्र अनिल मीतल(अलीगढ़) एवं संयोजक प्रपौत्र उमंग एवं प्रपौत्र वधु निधि मीतल द्वारा दोनों अतिथियों को शॉल और पटुका ओढ़ाकर बुके तथा स्मृति-चिह्न स्वरूप श्रीराधा कृष्ण की छवि भेंट की गई। उपस्थित सभी साहित्यिक विभूतियों का भी पटुका ओढ़ाकर स्वागत किया।

मुख्य अतिथि पद से पद्मश्री मोहन स्वरूप भाटिया ने कहा कि इस आयोजन के संयोजक श्री उमंग जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती निधि जी द्वारा डॉ. प्रभुदयाल मीतल जी को समर्पित यह सम्मेलन कोई आयोजन न होकर उस महान विभूति के प्रति सच्चा कृतज्ञता अनुष्ठान है। मैं आयोजकों के प्रति हार्दिक बधाई देता हूं। उन्होंने अनेक संस्मरण सुनाते हुए कहा कि जिन दिनों मेरी अपनी भी प्रेस गली सेठ भीकचंद में थी तो मेरी मीतल जी के साथ बराबर साहित्यिक चर्चाएं होती रहती थीं। वह स्वयं इतने कृतज्ञ थे कि एक बार उन्होंने मुझसे चंदसखी जी के कुछ लोक गीत लिए जिसका उन्होंने अपनी पुस्तक तक में उल्लेख किया। ऐसे महान मनीषी की स्मृति में आयोजनों की यह श्रृंखला बंद नहीं होनी चाहिए। उन्होंने एक प्रहसन के माध्यम से सभी का भरपूर मनोरंजन भी किया।

सम्मेलन के प्रारंभ में डॉ. राजेंद्र कृष्ण ने डॉ. मीतल जी के साहित्यिक अवदान की चर्चा करते हुए कहा कि उन्होंने अपने जीवन काल में लगभग 60 महत्वपूर्ण कृतियों का प्रणयन किया। दुर्भाग्य से आज उनके परिवारी जनों के पास भी उनका बहुत थोड़ा साहित्य ही उपलब्ध है। उन्होंने कहा कि ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास और ब्रज की कलाओं का इतिहास जैसे ग्रंथों ने न जाने कितने देशी-विदेशी शोधार्थियों का मार्गदर्शन किया है। ये तीनों ग्रंथ आज पुस्तकालयों तक से नदारद हैं। इन वृहद् ग्रंथों के प्रकाशन की महती आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि सन् 1975 के लगभग उन्होंने मुझे अपने बहुत सारे ग्रंथ भेंट किए थे जो आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं। यदि उनका पुनर्प्रकाशन हो तो मैं उन्हें दे सकता हूं। उन्होंने ब्रज की वर्तमान दशा और वृंदावन के विलुप्त होते पुरातन स्वरूप को अपने नव सृजित गीत के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया -

जा दिन ब्रज जन मन बनि लैगौ बिंदावन।
पहले कौ सौ पुनि बनि लैगौ बिंदावन।।

डॉ. नटवर नागर ने मीतल जी द्वारा ब्रज की साहित्यिक गोष्ठियों में दिए गए उनके विद्वत्तापूर्ण अनेक उद्बोधनों की चर्चा करते हुए उनके द्वारा लिखे देशभक्तिपरक दुर्लभ साहित्य की भी चर्चा की। डॉ. रमाशंकर पांडे ने अपने अध्यापन काल के दौरान उनकी पुस्तकों की आवश्यकता के समय यहां से साहित्य प्राप्त करने की बात करते हुए काव्य के माध्यम से भावांजलि दी।

डॉ. एस पी सिंह ने संग्रहालय के सहायक निदेशक बनकर मथुरा आने पर उनके साहित्य के गहन अध्ययन से ब्रज की कला और संस्कृति से परिचित होने की बात कही।

कवि निशेष ज़ार ने मीतल जी के साहित्यिक अवदान को निरूपित करते हुए काव्य पाठ किया। कवि राहुल गुप्ता ने एक छंद के माध्यम से मीतल जी को अपनी भावांजलि प्रस्तुत की। कवि जितेंद्र सिंह और अटलराम चतुर्वेदी ने काव्य पाठ के माध्यम से भावांजलि दी। कवि संतोष कुमार सिंह ने अपने काव्य पाठ का समापन एक हास्य रचना से किया। डॉ. नीतू गोस्वामी ने काव्य पाठ और लोक गायिका डॉ. सीमा मोरवाल ने गीत प्रस्तुत कर अपने शब्द सुमन समर्पित किए।योगेश कुमार और दीपक गोस्वामी ने भी मीतल जी

के संबंध में अपने विचार रखे।

पं. मोहिताचार्य भक्तमाली ने डॉ. मीतल के साहित्यिक योगदान पर अपने विचार रखते हुए उनके साहित्य के संरक्षण पर बल दिया। योगेश कुमार और चंद्रप्रकाश मिश्र ने काव्य पाठ के माध्यम से भावांजलि प्रस्तुत की। चंद्र प्रताप सिंह सिकरवार, वृषभानु गोस्वामी, उपेंद्र त्रिपाठी और सुनील शर्मा आदि ने भी अपने विचार रखे।

डॉ. प्रभुदयाल मीतल जी के परिवार जनों में से ममता मीतल और कुमकुम गोयल ने भी अपने भावभीने उद्गार प्रस्तुत करते हुए काव्य पाठ कर सबका मन मोह लिया।अनिल मीतल,संदीप मीतल,बीना मीतल,प्रज्ञा मीतल,ममता मीतल,कुमकुम गोयल और वर्तिका गोयल ने भी अपने दादा जी के प्रति भावांजलि अर्पित की।

अंत में निधि मीतल ने सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया।

रात्रि भोज के साथ कृतज्ञता अनुष्ठान रूपी यह साहित्यिक सम्मेलन संपन्न हुआ। इस अवसर पर डॉ. धर्मराज, पार्षद मनोज एडवोकेट,उद्योगपति पवन चतुर्वेदी,उमेश बंसल,मुकेश अग्रवाल,पत्रकार अशोक बंसल आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

ऑल इंडिया डांस प्रतियोगिता भरतनाट्यम में स्वस्तिका प्रथम

हल्द्वानी की स्वस्तिका जोशी ने ऑल इंडिया डांस ड्रामा प्रतियोगिता में भरतनाट्यम नृत्य में प्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तराखंड का मान बढ़ाया। ऑल इंडिया आर्टिस्ट एसोसिएशन शिमला द्वारा 68 वे ऑल इंडिया डांस ड्रामा प्रतियोगिता का आयोजन 6 जून से 10 जून तक शिमला में किया गया। जिसमें 19 राज्यों के 380 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया। प्रतियोगिता में 15 प्रविष्ठियां उत्तराखंड राज्य से थी। स्वस्तिका ने बाल वर्ग भरतनाट्यम में प्रथम स्थान प्राप्त किया वही भरतनाट्यम युगल नृत्य में भी प्रथम स्थान पर रही। संगीत की पारिवारिक पृष्ठभूमि में जन्मी स्वस्तिका जोशी हल्द्वानी के सेंट थेरेसा स्कूल में कक्षा 5 की छात्रा हैं। 4 वर्ष की आयु से ही स्वस्तिका का शास्त्रीय संगीत की ओर रुझान रहा। दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत से ज्यादा प्रभावित स्वस्तिका पिछले 2 वर्षों से भरतनाट्यम नृत्य की विधिवत शिक्षा गुरु शुभम खोवल से प्राप्त कर रही है। स्वस्तिका की पहली मंच प्रस्तुति पर गुरु द्वारा घुंघरू की पूजा विधि विधान से शिमला के प्रसिद्ध मंदिर कालीबाड़ी में मां काली के सम्मुख की गई।

स्वस्तिका भरतनाट्यम के साथ ही वायलिन की शिक्षा गुरु पंडित हरीश चंद्र पंत स्वर संगम संगीत संस्थान से ले रही है। स्वस्तिका को संस्कार रूप में नृत्य अपनी माता डॉ. दीपा जोशी से प्राप्त हुआ डॉ. दीपा जोशी एक प्रतिष्ठित कथक नृत्यांगना हैं। वही बड़ी बहन वेदांती जोशी भी एक कथक नृत्यांगना है और उत्तराखंड शासन के उत्तराखंड की बेटी सम्मान से भी सम्मानित है। स्वस्तिका के प्रथम आने पर संगीत व कला से जुड़े लोगों ने बधाई दी।

संस्मरण

जब शबाना ने मुझे क्लोजअप क्लिक करने से रोका

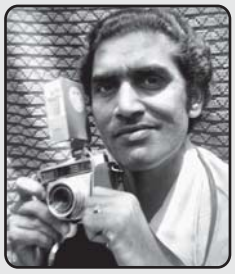

जगदीश कौशल

यह किस्सा आज से लगभग 40 वर्ष पुराना है। उन दिनों मैं अपनी शासकीय सेवा के दौरान मध्यप्रदेश शासन के जनसम्पर्क विभाग में संयुक्त संचालक फोटो-फिल्म शाखा के पद पर पदस्थ था। वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी भी एल.के. मल्होत्रा जी हमारे विभाग के सचिव पद पर थे। तब अर्जुनसिंह जी मुख्यमंत्री थे।

मैं आफिस के अपने कक्ष में बैठा था तभी फोन की घन्टी बजी मैंने फोन का रिसीवर उठाया हलो... उधर से उत्तर मिला - आप कौशल जी बोल रहें हैं क्या ? मैंने कहा हाँ मैं कौशल ही बोल रहा हूँ। सचिव महोदय आपसे बात करना चाहते हैं कृपया फोन पर ही रहे। फिर कुछ देर में आदरणीय मल्होत्रा साहब की आवाज आई- कौशल आधा घन्टा बाद तुम अपने कैमरे लेकर मेरे घर आ जाओ कुछ इम्पोंटेन्ट फोटोग्राफ्स करना हैं। मै उनके घर पहुँचा तो उन्होंने पूँछा कलर और ब्लेक एंड वाइट दोंनो कैमरें हैं ना ? मैंने कहा यस सर - वह बोले चलो मेरे साथ गाड़ी में बैठों। कुछ समय बाद हमारी गाड़ी भोपाल के सुप्रसिद्ध होटल नूर अस सबहा पर जा पहुँची। मल्होत्रा साहब मुझे उस कमरे पर लेकर गये जहाँ उन दिनों की भारतीय फिल्म जगत की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री शबाना आजमी ठहरी हुई थी। आदरणीय मल्होत्रा साहब ने शबाना जी से मेरा परिचय कराया कि ये मिस्टर कौशल हैं जनसर्म्पक विभाग के फोटो-फिल्म शाखा के इंचार्ज हैं- सबसे बड़ी बात ये खुद एक बहुत अच्छे फोटोग्राफर हैं। इन्होंने पृथ्वीराज कपूर, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, बिसिमिल्ला खाँ साहब, जैसी अनेक महान हस्तियो के फोटो किए हैं आज ये तुम्हारे (शबाना) भी कुछ फोटो क्लिक करेंगें। शबाना जी ने मधुर मुस्कान और आत्मीयता से मेरा अभिवादन स्वीकार किया मेरे ज़हन में ''अर्थ'' फिल्म वाली शबाना का चेहरा घूम रहा था विशुद्ध भारतीय परिवेश वाली साधारण नारी का लेकिन- इस समय मेरे सामने जो खड़ी हैं वह बहुरंगी शलवार और कुर्ती पहने हुए कांधे पर दुपट्टा डाले हुए बाबड् हेयर वाली आधुनिक भारतीय नारी हैं। शबाना जी के सुझाव पर ही मैंने इनडोर फोटो न करके होटल लान में रखें हुए एक झूले पर बैठकर उनकी विभिन्न मुद्राओं में फोटो क्लिक किए। मैं कलर फिल्म और ब्लेक एण्ड वाइट फिल्म के अपने दोंनो कैमरे कंधे पर लटकाए उनकी फोटो शूट कर रहा था। क्लोज अप फोटो करने में महारथ होने के कारण मैं उनके करीब जाने लगा तो, उन्होंने मुझे रोका दिया वह बोंली मिस्टर मल्होत्रा ''ही इस कमिंग वेरी क्लोज टूमी, आस्कहिम टु गैट बैंक- बिकाज आई एम नॉट इन मेकअप'' लेकिन मैं उनकी भावनाओं को समझते हुए पहले ही उनसे दूर हट गया था।

सम्पर्क सूत्रः- ई 3/320 अरेरा कालोनी, भोपाल
मो. 9425393429

■

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

शबाना आजमी

जन्म –18 सितम्बर 1950

भारतीय रजतपट की सुविख्यात अभिनेत्री शबाना आजमी का जन्म –18 सितम्बर 1950 के दिन उर्दू से सुप्रसिद्ध शायर–फिल्मी गीतकार श्री कैफी आजमी और थिएटर अभिनेत्री श्रीमती शौकत आजमी के घर हैदराबाद में हुआ था. उनका उपनाम को को है जो बहुत कम लोग ही जानते हैं। उन्होंने स्कूली शिक्षा क्वीन मैरी स्कूल मुबंई तथा महाविद्यालयीन शिक्षा सेंट जेवियर्स कॉलेज मुबंई से प्राप्त की। मनोविज्ञान में डिग्री प्राप्त करने के बाद फिल्म एंड टेलिविलन इंस्टिटीयूट ऑफ इडिया, पुणे से एक्टिंग का कोर्स पूरा किया। श्याम बेनेगल की फिल्म ''अंकुर'' से अपना फिल्मी सफर प्रारम्भ करने वाली शबाना को पहली ही फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। वर्ष 1983 से 1985 तक लगातार तीन सालों तक उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव हासिल हैं। शबाना की उपलब्धियों, पुरस्कारों की कतार बहुत लम्बी है। जहाँ एक ओर उन्हें अंकुर, अर्थ, पार, स्वामी, गाडफादर और खंडहर जैसी फिल्मों के लिए प्रतिष्ठित राष्ट्रीय फिल्म फेयर पुरस्कार प्राप्त हुए हैं वह दूसरी ओर वर्ष 1998 में उन्हें भारत सरकार द्वारा देश के सबसे बड़े नागरिक सम्मान पद्म और वर्ष 1912 में पद्म भूषण से सम्मानित किया जा चुका है। फिल्मों के अलावा शबाना आजमी सामाजिक कार्यो में भी बढ़ चढ़कर हिस्सेदारी करती हैं वह राजनीतिक मुद्दों पर भी खुलकर अपनी बात रखती हैं शबाना आजमी का यह दुर्लभ फोटो भोपाल के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध फोटोग्राफर श्री जगदीश कौशल ने आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व उनके भोपाल प्रवास के दौरान भोपाल के नूरअस सबहा होटल में क्लिक किया गया था।

■

कला समय-कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में एक व्याव्हारिक मार्गदर्शिका है

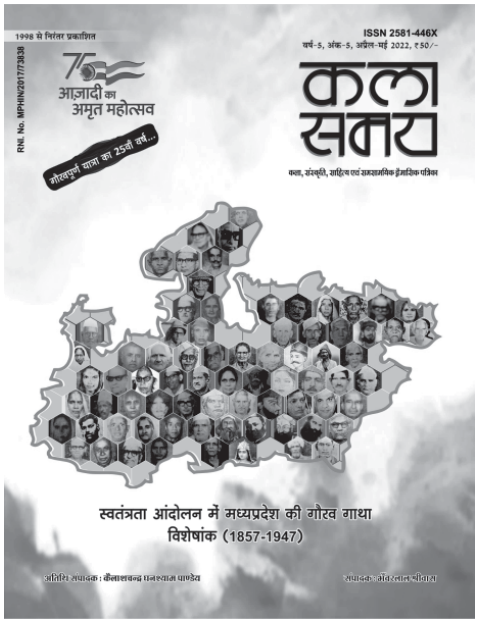

कला समय एक साहित्य-सांस्कृतिक द्वैमासिक पत्रिका है। सन् 2022 में गौरव पूर्ण 25 वर्ष पूर्ण करने एवं आजादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में अप्रैल-मई 2022 का अंक स्वतंत्रता आन्दोलन में मध्यप्रदेश की गौरवगाथा-विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया। इस पत्र के संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास है तथा अतिथि सम्पादक डॉ. कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय है। पाण्डेय जी प्रवृत्तित: एक पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक अभिरूचि के अध्ययनशील अनुसंघायक है। कला समय के प्रस्तुत अंक में उनका ''प्रथम स्वतंत्रता समर से स्वाधीनता तक मध्यप्रदेश का योगदान'' एक शोधपूर्ण आलेख है जिसमें मध्यप्रदेश के दस संभाग और बावन जिलों में भारत की संस्कृति, स्वाभिमान एवं आजादी के लिए संघर्ष एवं बलिदान करने वाले सेनानियों की शौर्यगाथा है। प्रांरभ में प्रत्येक जिले का भौगोलिक एतिहासिक और पुरातात्विक, विवेचन संक्षेप में किया गया है। तत्पश्चात् उस क्षेत्र के स्वतंत्रता संग्राम की लोमहर्षक घटनाओं का वर्णन है। जिला रायसेन के छोटे लाल, घनसिंह, मंगलसिंह, और विशालसिंह ऐसे वीर नौजवान थे जो भोपाल के विलीनीकरण के आन्दोलन में शहीद हो गए किन्तु तिरंगा झंडा जमीन पर नहीं गिरने दिया। रतलाम के उदयलाल पांचाल, काशीबाई पांचाल, एवं श्रीमति दुर्गादेवी निगम का आजादी के लिये संघर्ष का उल्लेख है। इस प्रकार प्रत्येक जिले में स्वतंत्रता संग्राम का उज्जवल इतिहास एवं ज्ञात क्रांतिकारियों के साथ साथ अल्पचर्चित एवं अज्ञात अनेक सेनानियों के त्याग और बलिदान की गाथा प्रस्तुत आलेख में है। इसके साथ ही प्रत्येक जिले का मानचित्र एवं वहाँ के एतिहासिक स्थलों के चित्र की आलेख में दिये गये हैं। पूरे देश में स्वतंत्रता आन्दोलन की घटनाओं का व्यौरा एकत्र करना, वहाँ के स्वतंत्रता सेनानियों की जानकारी हासिल करना एक श्रमसाध्य कार्य है जिसे पाण्डेय जी ने बडी कुशलता से संपादित किया है। यह आलेख मध्यप्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम का प्रमाणिक दस्तावेज है।

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल का ''आदि शंकराचार्य का कश्मीर में अवस्थान- संदर्भ एवं परिप्रेक्ष्य'' दूसरा महत्वपूर्ण आलेख है। इसमें विदुषी लेखिका ने महाभारत, पुराण एवं कहलन कृत राजतरंगिणी को उद्घृत कर कश्मीर की पृष्ठभूमि पर विचार कर वहाँ के शारदा देवी के मंदिर के दक्षिणद्वार को खुलवाने के लिये आदि शंकराचार्य का कश्मीर आगमन, वहाँ छ: विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों को शास्त्रार्थ में संतुष्ट कर शारदा देवी मंदिर का दक्षिण द्वार खुलवाना कश्मीर में ''सौन्दर्य लहरी'' ग्रन्थ की रचना एवं अद्वैत वैदांत के प्रचार का बडा ही रोचक एवं विद्वात्तापूर्ण वर्णन हैं।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जी ने अपने आलेख ''कला के अमृत घट और स्वंतत्रता का अमृतपर्व'' में प्राचीन भारत में विकसित कला को सुरक्षित रखने का आग्रह है जिसके कारण इस देश की पहचान है। अन्य लेखों में- फोटोग्राफी कला में निष्णात भालू मोढ़े, संतूरवादक शिवकुमार शर्मा के संस्तरणात्मक परिचय के साथ श्री जगदीश कौशल का ''बुंदेली लोकगीतों में राष्ट्रीय स्वर'' लेख के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण का संदेश दिया गया है।

प्रस्तुत अंक स्वतंत्रता संग्राम, कला, साहित्य संबंधी लेखों का संकलन मात्र नहीं है वरन् यह राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में सफलता की एक व्यवहारिक मार्गदर्शिका है। साथ ही हमारे खोये हुए आत्मविश्वास को जागृत करने हेतु यह एक सार्थक प्रयास है। इसके लिए सम्पादक द्वय को साधुवाद।

- गौरी शंकर दुबे
सनसिटी कॉलोनी, मकान नं.-सी-55, सैलाना रोड, रतलाम-457001

■

Ekatma Dham
A GLOBAL CENTRE OF ONENESS

सर्वं खल्विदं ब्रह्म

ADVAITA YOUTH CAMP

LIVING WITH THE MASTER

11-21 JUL 2023

Swami Paramatmananda Saraswati

Arsha Vidya Gurukulam,
Rishikesh, Uttarakhand

Text
Tattvabodha, Hindi

1-10 AUG 2023

Swamini Vimalananda Saraswati

Chinmaya Gardens
Coimbatore, Tamil Nadu

Text
Atmabodha, Hindi

28 OCT-6 NOV 2023

Swami Advayananda Saraswati

Chinmaya International Foundation,
Veliyanad, Kerala

Text
Atmabodha, English

2023

3 Camps
150 Seats

Choose any one

Register at
www.statueofoneness.in

ACHARYA SHANKAR SANSKRITIK EKTA NYAS
DEPT. OF CULTURE, GOVT. OF MADHYA PRADESH

आपका अपना

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ●
● नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है। चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तो के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।

विशेष सुविधा

- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि की व्यवस्था है।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा भी उपलब्ध है।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, कला समय ऑनलाईन आदि) पर भी विक्रय के लिये प्रदर्शन की व्यवस्था है।

आप स्वयं पधारे या संपर्क करें....

0755-2562294, 9425678058
kalasamayprakashan@gmail.com
कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

कला समय के गौरवपूर्ण प्रकाशन

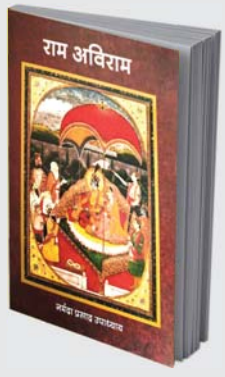

राम अविराम
मूल्य: ₹400

थमे नहीं चरण
मूल्य: ₹400

छोटे मुँह छोटी सी बात
मूल्य: ₹450

Azadi Ka Amrit Mahotsav

कभी कभी

दिल की बात

ही मायने रखती है

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड

Delivering Happiness

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड हमेशा से अपनी सीएसआर गतिविधियों के माध्यम से परिवर्तन का स्रोत होने में विश्वास रखता रहा है। सीएसआर को मुख्य व्यवसाय के साथ अपनाकर, एचपीसीएल लोगों के जीवन में सार्थक बदलाव लाते हुए खुशियाँ बिखेरने के लिए प्रतिबद्ध है। बच्चों की देखभाल, शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास, खेलकूद और सामुदायिक विकास जैसे प्रमुख क्षेत्रों में अभिनव, मूल्यवान और बेहतर तरीके से बनाई गई सीएसआर परियोजनाएं समाज के बहुसंख्य वंचित वर्गों तक पहुंचने में हमारी सहायता करती हैं ।

MoPNG eSEVA : For prompt action on any Oil & Gas related query, please contact /MoPNGeSeva | /MoPNG_eSeva

/hpcl | /hpcl | /hpcl

www.hindustanpetroleum.com

G20

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास